श्री वल्लभ दिग्विजय

जगद्गुरु श्रीमद् वल्लभाचार्य वंशावतंस
आचार्य वर्य्य गोस्वामि तिलकायित
श्री 108 श्री इन्द्रदमन जी (श्री राकेश जी) महाराज

जन्मतिथि
फाल्गुन शुक्ल ७, वि.सं. २००६

प्राकट्य
२४ फरवरी, १९५०

श्री नाथद्वारा के टिकेत महाराजन की वंशावली

१. श्री आचार्यजी श्री महाप्रभुजी (श्री वल्लभाचार्यजी)

प्राकट्य

सम्वत्	मास	दिवस
1535	वैशाख	कृ. 11

लीला संवरण

सम्वत्	मास	दिवस
1535	वैशाख	कृ. 11

२. श्रीगोपीनाथजी

प्राकट्य

सम्वत्	मास	दिवस
1567	आश्विन	कृ. 12

लीला संवरण

सम्वत्	मास	दिवस
1599		

३. श्रीगुंसाईजी (श्री विट्ठलनाथजी)

प्राकट्य

सम्वत्	मास	दिवस
1572	पौष	कृ. 9

लीला संवरण

सम्वत्	मास	दिवस
1642	माघ	कृ.7

४. श्री पुरुषोत्तम जी

प्राकट्य

सम्वत्	मास	दिवस
1588	अश्विन	कृ. 9

लीला संवरण

सम्वत्	मास	दिवस
1606		

५. श्री गिरधरजी
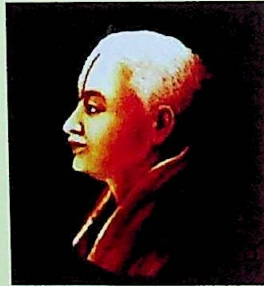
प्राकट्य

सम्वत्	मास	दिवस
1597	कार्तिक	शु. 12

लीला संवरण

सम्वत्	मास	दिवस
1677	पौष	कृ. 2

६. श्री दामोदरजी

प्राकट्य

सम्वत्	मास	दिवस
1572	पौष	कृ. 9

लीला संवरण

सम्वत्	मास	दिवस
1642	माघ	कृ.7

७. श्री विट्ठलेशराय जी

प्राकट्य			लीला संवरण		
सम्वत्	मास	दिवस	सम्वत्	मास	दिवस
1657	श्रावण	शु. 14	1711	पौष	कृ. 9

८. श्री लालगिरधर जी

प्राकट्य			लीला संवरण		
सम्वत्	मास	दिवस	सम्वत्	मास	दिवस
1689	वैशाख	शु.7	1723	श्रावण	शु. 1

९. श्री दामोदर जी (बड़े दाऊजी)

प्राकट्य			लीला संवरण		
सम्वत्	मास	दिवस	सम्वत्	मास	दिवस
1711	माघ	कृ. 8	1760		

१०. श्री विट्ठलेशराय जी

प्राकट्य

सम्वत्	मास	दिवस
1743	भाद्रपद	शु. 6

लीला संवरण

सम्वत्	मास	दिवस
1793	कार्तिक	

११. श्री गोवर्द्धननेशजी

प्राकट्य

सम्वत्	मास	दिवस
1763	श्रावण	कृ. 10

लीला संवरण

सम्वत्	मास	दिवस
1819	माघ	कृ. 7

१२. श्री गोविन्दजी

प्राकट्य

सम्वत्	मास	दिवस
1769	पौष	कृ. 11

लीला संवरण

सम्वत्	मास	दिवस
1830	ज्येष्ठ	शु. 6

१३. श्री बड़े गिरिधरजी

प्राकट्य

सम्वत्	मास	दिवस
1525	आषाढ़	कृ. 30

लीला संवरण

सम्वत्	मास	दिवस
1863	वैशाख	शु.11

१४. श्री दाऊजी (द्वितीय)

प्राकट्य

सम्वत्	मास	दिवस
1853	आश्विन	शु.4

लीला संवरण

सम्वत्	मास	दिवस
1882	फाल्गुन	कृ. 30

१५. श्री गोविन्दजी

प्राकट्य

सम्वत्	मास	दिवस
1877	कार्तिक	शु. 14

लीला संवरण

सम्वत्	मास	दिवस
1902	फाल्गुन	कृ. 12

१६. श्रीगिरिधारी जी

प्राकट्य			लीला संवरण		
सम्वत्	मास	दिवस	सम्वत्	मास	दिवस
1899	ज्येष्ठ	शु. 13	1959	वैशाख	शु.14

१७. श्री गोवर्द्धनलालजी

प्राकट्य			लीला संवरण		
सम्वत्	मास	दिवस	सम्वत्	मास	दिवस
1919	भाद्रपद	कृ. 1	1990	आषाढ़	शु. 2

१८. श्री दामोदरलाल जी

प्राकट्य			लीला संवरण		
सम्वत्	मास	दिवस	सम्वत्	मास	दिवस
1958	पौष	शु. 6	1992	श्रावण	शु. 15

१९. श्रीगोविन्दलालजी

प्राकट्य

सम्वत्	मास	दिवस
1984	मार्गशीर्ष	कृ. 7

लीला संवरण

सम्वत्	मास	दिवस
2051	माघ	कृ. 4

२०. श्री दाऊजी (श्रीराजीवजी)

प्राकट्य

सम्वत्	मास	दिवस
2005	पौष	कृ.1

लीला संवरण

सम्वत्	मास	दिवस
2056	चैत्र	कृ. 10

२१. श्री राकेशजी(इन्द्रदमनजी)
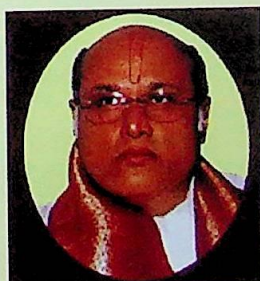
प्राकट्य

सम्वत्	मास	दिवस
2006	फाल्गुन	शु. 7

२२. चि. श्री भूपेशकुमारजी (विशाल बावा)

प्राकट्य

सम्वत्	मास	दिवस
2037	पौष	कृ. 30

श्री वल्लभ दिग्विजय

श्री नाथद्वारस्थ विद्याविलासी गोस्वामि तिलकायित
श्री 108 श्री इन्द्रदमनजी (श्री राकेशजी)
महाराज श्री की आज्ञा से प्रकाशित

गो. श्री यदुनाथजी महाराज विरचित

सम्पादक एवं संशोधक
त्रिपाठी यदुनन्दन श्री नारायण जी शास्त्री
साहित्यायुर्वेदाचार्य, एम.ए. हिन्दी, संस्कृत
अध्यक्ष

प्रकाशक
विद्या विभाग, मंदिर मण्डल, नाथद्वारा

तीयावृत्ति – २००० संवत् २०७३
ल्लभाब्द ५३७ न्योछावर २०

।। श्रीहरिः ।।

❋ प्रस्तावना ❋

श्रीमद्वेदव्यास विष्णुस्वामि मतवर्ती अखण्ड भूमण्डलाचार्य जगद् गुरु [म]हाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्य जी का यह दिग्विजय चरित आपके छटे पौत्र [श्र]ीयदुनाथजी महाराज ने संस्कृत में संगृहीत किया था। यह सर्वमान्य है।

इस ग्रन्थ में पूर्वोक्त महाराज ने दीक्षित श्रीयज्ञनारायण भट्ट से प्रारम्भ [क]र श्री आचार्य चरण के पुत्र श्रीविट्ठलनाथाचार्य जी (श्रीगुसांई जी) तक का [सं]क्षिप्त चरित्र वर्णन किया है। किन्तु यह सब श्री आचार्य चरण के चरित [उ]पोद्–वलक रूप से है और उद्दिष्ट तो 'श्रीमदाचार्य चरण चरितामृत' ही है।

ग्रन्थ के मुख्यतया सात प्रकरण हैं। प्रथम, द्वितीय चरित्रावच्छेद, प्रथम, द्वितीय, तृतीय यात्रा तथा पूर्व चरित्रावच्छेद, उत्तर चरित्रावच्छेद है तथा [श्र]ीवल्लभदिग्विजय पूर्व में नित्य ली. गो. ति. श्री १०८ श्री गोवर्द्धन लालजी [म]हाराज की आज्ञा से विद्याविभाग निरीक्षक आशुकवि पं. श्रीनन्द किशोरजी [श]ास्त्री के शिष्य श्रीपुरुषोत्तम जी चतुर्वेद ने अनुवाद किया था तथा सन् १६१७ [ई]. में सुदर्शन यन्त्रालय से प्रकाशित हुआ था। वर्तमान में विद्याविलासि गो. [ति]लक श्री १०८ श्री राकेश जी (श्री इन्द्रमनजी) महाराज श्री की आज्ञा से इस [ग्र]न्थ को पुनः प्रकाशित किया है। आशा है कि वैष्णव इससे लाभान्वित होंगे। [अ]शुद्धि संशोधन में त्रुटि हो तो विज्ञजन क्षमा करेंगे।

❋ निवेदक ❋

त्रिपाठी यदुनन्दन श्री नारायण जी शास्त्री
साहित्यायुर्वेदाचार्य, एम.ए. हिन्दी, संस्कृत
अध्यक्ष
विद्या विभाग, मंदिर मण्डल नाथद्वारा (राज.)

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ

अथ श्रीवल्लभदिग्विजय

श्रीमदाचार्य (श्रीवल्लभाचार्यजी) के चरणकमलयुगल को णाम करके (श्री) यदुनाथ (जी), गुरु (श्रीवल्लभाचार्यजी) के रित्रविजय को संग्रह करते हैं।।१।।

श्रीअगस्त्यमहर्षि से पालित परमपवित्र दक्षिणदिशा में स्तम्भाद्रि के मीप परम समृद्ध **काकुम्भकर** इस नाम से प्रसिद्ध बडी भारी नगरी है। वहाँ ारद्वाज महर्षि के वंश में उत्पन्न हुए, तैत्तिरीयशाखाध्यायी, त्रिप्रवर, और जनकी कुलदेवता **रेणुका** है, ऐसे वेल्लनाड् तैलंग ब्राह्मण निवास करते थे। स पवित्र ब्राह्मण कुल में श्रीगोविन्दाचार्य के अनुगृहीत आचार्य श्रीवल्लभभट्टजी े वंश में, मानो महर्षि वेदव्यासजी की दूसरी मूर्ति और वेद के अवतारभूत ीक्षित **श्रीयज्ञनारायणभट्टजी** हुए। उन्होंने बाल्यावस्था में ही सब वेदशास्त्रों ा अध्ययन कर **देवपुर** में रहने वाले सुधर्मशर्मा की **नर्मदा** नाम्नी सुलक्षणा न्या से विवाह किया।

एक समय उनके पास द्रविड देश में रहने वाले परमवैष्णव विष्णुमुनि ाये। भट्टजी ने उनका स्वागत–सत्कार किया। अनन्तर जब विष्णुमुनि सुख े विराज गये तो कहने लगे कि "भक्ति मीमांसाग्रन्थ" के विचारने से मुझे राग्य प्राप्त हुआ है और उस मीमांसा ग्रन्थ की मैंने "भक्तयुल्लासिनी" याख्या भी बनाई है। यह सुनकर **यज्ञनारायणजी** ने भक्तिधर्म की प्राप्ति के लये प्रार्थना की। मुनि ने प्रसन्न होकर **विष्णुस्वामी,** विल्वमंगल और दिवोदास े सम्प्रदाय से प्राप्त **श्रीगोपालमनुका** उपदेश किया और वहाँ से पधारे। दनन्तर भट्टजी भी श्रौत स्मार्तधर्मों के साथ ही साथ प्रेम सहित निजकुलदैवत श्रीगोपाल) की परिचर्या करने लगे। आप प्रतिवर्ष सोगयाग पर्यन्त के प्रकृति[1] ाग किया करते थे। किसी समय सोमयज्ञ में सोमाहुति करते हुए अग्निमण्डल ं अति श्रद्धा से भगवान् वासुदेव का ध्यान करते थे कि इतने में उनने उसी

1– अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, पशु, चातुर्मास्य, सोम, ये पाँचों प्रकृतियाग कहलाते हैं। आप प्रतिवर्ष पाँचों यज्ञ करते थे।

अग्निमण्डल में परम रमणीय वराभयमुद्रा से विराजित पीताम्बरधर कमल नय
विप्रवेष से प्रकट हुए भगवान् को देखा। अनन्तर अत्यन्त आनन्द के साथ पृथ
में पड़कर साष्टाङ्ग प्रमाण किया। जब भगवान् ने प्रबोध कराके उठाया
हाथ जोड़कर कहने लगे।

हे भगवन्! सम्पूर्ण निगम और आगम आपका गुणगान करते हैं। दे
काल–कर्ता–कर्म–मन्त्र–द्रव्य सबके नियामक तथा अभिमत फलदायक अ
ही हैं। यद्यपि हम यह नहीं जानते हैं कि भगवान् की परिचर्या किन उपचा
से करनी चाहिए, तथापि आप सहजदयालुता के कारण भजन करने वाले
मानसिक भी पत्रपुष्पादि अथवा स्वतः सिद्ध प्राप्त हुए उपचारों से भगवान्
संमर्हण किया और भगवान् यज्ञनारायण ने उस समर्हण को ग्रहण कर
माँगने के लिये प्रेरित किया। जब दर्शन से ही कृतार्थ हुए भट्टजी ने कुछ
न माँगा तो श्रीयज्ञनारायण ही कहने लगे। पूर्णकाम तुम्हारे अवदात (शुद्ध) य
को विस्तीर्ण करता हुआ शत सोमयज्ञ हो जाने के बाद थोडे ही समय में तुम्ह
वंश में सद्धर्म के रक्षार्थ स्वयं मैं अवतार लूँगा। इस तरह प्रीति से प्रत्यर्पण कर
भगवान् उस ही अग्निमण्डल में तिरोहित हो गये। यह वार्ता श्रीयज्ञनाराय
भट्टजी ने ही अपने बताये हुए "सक्रियानिबन्ध" ग्रन्थ के अन्त में लिखी है

जिसका सार है-

"जो यज्ञनारायण मेरे यज्ञ में प्रत्यक्ष हुए थे। उनके चरणारविन्द युग
में याज्ञिकों के प्रीत्यर्थ मैंने अपने गृह्यसूत्र की व्याख्यारूपिणी पुष्पमाल
समर्पण की हैं"।

उन यज्ञनारायण भट्टजी के अनेक सद्गुणसम्पन्न सर्वतन्त्र स्वत
वेदवेदान्तज्ञ **गङ्गाधर सोमयाजी** इस नाम से विश्रुत पुत्र हुए। उन
ब्रह्मचर्याश्रम के पीछे वत्सगोत्री त्रिरुम्मल नाम के ब्राह्मण की कांचीनामक कन
के साथ विवाह किया। इन्होंने भी **मीमांसारहस्यादि** अनेक ग्रन्थ निर्माण कि
और सहधर्मिणी सहित यज्ञ और भक्ति से भगवान् को प्रसन्न किया।

इनके पुत्र **गणपतिसोमयाजी** हुए। ये भी सकलधर्मज्ञ तथा सर्ववेद
थे। सर्ववेदाध्ययन के अनन्तर दक्षिण मथुरानिवासी वसिष्ठगोत्री केशव शर्मा
पुत्री अम्बिका के साथ ब्राह्मविधि से इनका विवाह हुआ और उस अप

प्राणवल्लभा के साथ नित्य नैमित्तिक श्रौत स्मार्त कर्मों को करते हुए अपने कुलदेव श्रीकृष्णचन्द्र के चरणकमल के सेवन से पूर्णकाम हुए। उन्होंने ही किसी समय दक्षिण कर्णाटक और द्रविडादि देशों के तीर्थों में विचरते हुए तथा अनेक शाक्त, शैव, पाशुपतादि पाषण्डमतों का खण्डन करते हुए बहुत से शिष्यों का सङ्ग्रह करके तथा विजयध्वजारोपण करके यह घोषणा की थी।

"शाक्त, पाशुपत, वैष्णव तथा तान्त्रिक, किसी को भी जो अपने मत का गर्व हो तो वह पहले हमसे विवाद कर ले"। इस घोषणा को सुनकर जो लोग विवादार्थ उपस्थित हुए व प्रबल श्रुति और स्मृति के प्रमाणों से परास्त किये गए। आपने भी **सर्वतन्त्रनिग्रह** नामक एक निबन्ध लिखा है।

इनके पुत्र **श्रीवल्लभसोमयाजी** हुए। जिनको बालम्भट्ट भी कहते थे। आप वेदाध्ययन के अनन्तर धर्मपुरीस्थ मुद्गलगोत्री श्रौतस्मार्तकर्मकर्ता ऋग्वेदी काशीनाथ शर्मा के वाजपेय यज्ञ में पधारे। वहाँ पर आपने प्रायश्चित्त के शास्त्रार्थ निर्णय से सबको सन्तुष्ट किये और पूर्वोक्त काशीनाथ शर्मा की पुत्री पूर्णा के साथ विवाह किया। यद्यपि आप कुम्भीधान्य (एक कोठीभर धान्य जिसके पास रहे अर्थात् थोड़े धान्य वाले) थे तथापि दर्शपूर्णमासादि से भगवद्यजन किया करते थे। अनन्तर यजनकर्म ही से आपने बहुत–सा धन–धान्य सम्पादन किया और उस धन–धान्य से सोमयज्ञादि यज्ञ सिद्ध करके श्री यज्ञ नारायण को प्रसन्न किया। आप पुत्रोत्पत्ति के अनन्तर सब ऋणों से मुक्त होकर सब तीर्थों की यात्रा करते हुए जनार्दन क्षेत्र में संन्यास ग्रहण करके भगवल्लोक को प्राप्त हुए। आपका बनाया हुआ **भक्तिदीप** नामक निबन्ध प्रसिद्ध ही है।

इनके दो पुत्र हुए। एक **श्री लक्ष्मणभट्टजी** और दूसरे **श्रीजनार्दनभट्टजी**। लक्ष्मण भट्ट जी ने विष्णुचित् दीक्षित से यज्ञोपवीत ग्रहण किया और नियम धारण करके सांङ्ग सरहस्य तथा पदक्रम–जटा–घन सहित वेद और वेदान्तों का पठन किया।

तदनन्तर आप गुरु की आज्ञा से घर आये और अपनी विद्याओं का प्रकाश करने लगे। आपके सुगुण सुनने से प्रसन्न होकर प्रार्थना करते हुए **विद्यानगर** के राजपुरोहित काश्यपगोत्री **सुशर्मा जी** की कन्या **यल्लमागारु**

और **इल्लमागारु** के साथ आपका परिणयन हुआ। किसी समय आपकी बसति **काकुम्भकर नगरी** को बलवान् प्रतिपक्षों ने लूट ली इसलिये आप उसके निकटवर्ती अपने **कांकरवार** नामक ग्राम में वास करने लगे और अनेक यज्ञयागादि भी करते रहे। जब आपके **रामकृष्ण, सुभद्रा, सरस्वती** ऐसे तीन सन्तति हो चुकी तो आप इस तरह विचारने लगे कि "अब शतसोमयज्ञ की पूर्ति भी हो चुकी है। यही भगवान् के प्रादुर्भाव का समय है पर अभी तक भगवदवतार नहीं हुआ। यह मेरे ही दुर्भाग्य का कारण है। यदि हमारे पूर्वजों का साधित अर्थ भी हमें सिद्ध न हो तो हमारा जन्म निरर्थक ही है"। इस तरह चित्त में अत्यन्त खिन्न होकर और सगर्भा तथा रुग्ण इल्लमागारू जी को छोड़कर तीर्थयात्रा के उद्देश्य से वहाँ से निकले और **जनार्दन क्षेत्र** में पधारे। वहाँ पर विष्णुस्वामिसम्प्रदाय के त्रिदण्डी **प्रेमाकर** मुनि से **गोपालमन्त्र** की दीक्षा ली। और उसका पुरश्चरण तथा सम्प्रदायग्रन्थों का अध्ययन करते हुए वहाँ निवास करने लगे। कुछ समय के बाद इनके पिता **वल्लभभट्टजी** सस्त्रीक अपनी पुत्रवधू (इल्लमागारूजी) और लक्ष्मणभट्टजी की सास को साथ लेकर अपने प्रिय पुत्र को ढूंढ़ने के लिए जनार्दन क्षेत्र में आये। वहाँ लक्ष्मणभट्टजी की स्त्री अपनी माता सहित मुनि के दर्शनार्थ आई और मुनि को प्रणाम कर बैठ गई। मुनि ने प्रसन्न होकर इल्लमागारूजी को "पुत्रवती भव" ऐसा और उनकी माता को "शान्ता भव" ऐसा वर प्रदान किया। अनन्तर माता अपने जमाई **लक्ष्मण भट्ट जी** को यतिजी के पास बैठे देखकर यति महाराज से प्रार्थना करने लगी कि 'आप कृपया इनको हमारे साथ भेज दीजिये। यति जी ने प्रार्थना सुनकर भगवान् का ध्यान किया। भगवान् ने ध्यान में आज्ञा दी कि "अब इनको जाने दो"। इस आज्ञा के बाद यति जी ने **लक्ष्मणभट्टजी** से कहा कि "पुत्र! अब आप घर जाइये भगवान् आपके मनोरथ को शीघ्र पूर्ण करेंगे" इस गुरु की आज्ञा के बाद रथ सकुटुम्ब लक्ष्मण भट्ट जी अपने पिता के समीप आये। पिताजी की आज्ञा से स्वगृह में आकर निजधर्म करने लगे।

किसी समय धर्मपुर के रहने वाले कौण्डिन्यगोत्री **शङ्करदीक्षित** आये और इस प्रकार कहने लगे कि मैं त्रिस्थली (प्रयाग–काशी–गया) यात्रा करना चाहता हूं। लक्ष्मण भट्ट जी ने भी विचार किया कि अद्यापि भगवदाज्ञा फलित नहीं हुई इसलिये मैं भी अपने अपराधों की निवृत्ति के लिए त्रिस्थली

त्रा करूं, और बोले कि मैं भी यात्रा करने को चलूंगा। क्योंकि "कलियुग यज्ञयागादिकों से भी गङ्गादिक तीर्थयात्रा अधिक है"। इत्यादि कहकर नको अपने गाँव भेजे और आप भी थोडे ही समय में सब तैयारी करके तथा **ल्लमाज़ी, रामकृष्ण, सुभद्रा, सरस्वती** और गृह इन सब को अपने भाई **नार्दनजी** के पास रखकर तथा अग्नियों को गाड़ी में धरकर अनेक यात्री, त्विक् और पत्नी सहित घर से प्रस्थित हुए। अनन्तर आप धर्मपुरी पधारे, र वहाँ से शङ्करदीक्षित जी को साथ लेकर पौषकृष्ण में **प्रयाग क्षेत्र** हुँचे। वहाँ पहुँचकर आपने तीर्थविधि से स्नान, मुण्डन, उपवास, देवार्चन, द्ध, दान, उभयमुखीगोदान, हवन, पुरोहितार्चनादि यथोचित किये। सेठ कृ दास जी ने सुना कि यहाँ सपत्नीक लक्ष्मण भट्ट जी माघमेले पर पधारे हैं। तः पुत्रकामना से सपत्नीक वे वहाँ आये और पुत्र होने की प्रार्थना करने गे। भट्ट जी ने अपने इष्टदेव का आराधन किया और सेठजी को वरदान कर अपने घर भेजा।

अनन्तर श्री लक्ष्मण भट्ट जी **काशी** पधारे और वहाँ हनुमान घाट पर पने सजातियों के घर उतरे। वहाँ अपने मणिकर्णिका स्नान, विश्वेश्वर न्दुमाधवादि के दर्शन किये और उस दिन उपोषित रहे। अन्यान्य कितने ही नों में काशीयात्रा समाप्त कर आप अपने सहचर वैदिक ब्राह्मणों सहित श्री या धाम को पधारे। वहाँ 17 सत्रह दिन में यथोचित यात्रा कर रामनवमी के न पुनः काशी पधारे। काशी पधार कर आपने रामनवमी का व्रत, रामचन्द्रजी ा उत्सव, तथा रात्रि को जागरण किया। रात्रि को लक्ष्मण भट्ट जी के "शत मयज्ञ हो चुके थे क्या अब भी भगवदाज्ञा का फल सम्पन्न न होगा" ऐसा ोच ही रहे थे कि, उनको "प्रातःकाल म्लेच्छों की सेना आयेगी और दण्डीलोग नके साथ युद्ध करेंगे इस लिये काशी की प्रजा दौड रही है" ये शब्द सुनाई ये। तब तो लक्ष्मण भट्ट जी और भी घबराये और सोचने लगे कि मैंने बारह र्ष तीर्थवास का संकल्प किया है वह भी सिद्ध होना कठिन मालूम पड़ता है र जो मैं करना चाहता हूं उसकी तो बात ही दूर रही। अथवा दैवगति विचित्र सम्पत्ति में विपत्ति और विपत्ति में सम्पत्ति इसी के बल से हो जाती है, ऐसा ोचते हुए अपने साथियों के पीछे पीछे आप भी सपत्नीक अपने देश के लिये ले और थोड़े दिन में **चम्पारण्य** पहुँचे। साथ वालों को आगे गये हुए जानकर

भट्ट जी ने सोचा कि 'संभव है इल्लमागारू जी भी आगे चली गई हों' अतः
चले आये।।

इधर भय से डरी हुई श्रीमती इल्लमागारू जी विक्रम संवत्
वैशाख कृष्ण ११ एकादशी गुरुवार धनिष्ठा नक्षत्र कर्क लग्न के समय अन्ध
रात्रि में चतुर्भद्रपुर क्षेत्र में महानदी के तीर पर शमी वृक्ष के नीचे निःसृत
साप्त–मासिक गर्भ को अजीवित समझ कर अपनी आधी साड़ी तथा शमी
से आच्छादित कर और शमी वृक्ष के कोटर में धरकर वहाँ से शीघ्र आगे नि
गई और अपने साथ में आ पहुँचीं। रात्रि में भट्ट जी तथा "इल्लमागारू
दोनों को भगवद्दर्शन हुआ और भगवान् ने आज्ञादी कि "तुम्हारे घर में
अवतीर्ण हुआ हूँ"। प्रातः काल साथ में सुना और कृष्णदास श्रेष्ठी के पत्र
भी विदित हुआ कि 'दण्डियों तथा राजपुरुषों ने म्लेच्छों को मार भगाया
काशी में सब जगह शान्ति हो गयी है'। तदनन्तर भट्ट जी की आज्ञा ले
स्वदेश जाने वाले देश को गये और काशी जाने वाले काशी को चले। सपत्नी
भट्ट जी भी गर्भज के अन्वेषणार्थ काशी जाने वालों के साथ हो लिये। मार्ग
इल्लमागारूजी ने जहाँ स्थान निर्देश किया वहाँ सब लोगों को ठहराकर
उनके साथ गये। अनन्तर वृक्ष को ढूँढ़ने लगे। वृक्ष मिल जाने पर क्या दे
हैं कि वृक्ष के चारों तरफ अग्निमण्डल है और उस अग्निमण्डल में अपने
वस्त्र के ऊपर कोई भगवद्रूप अप्राकृत बालक खेल रहा है। माताजी उसे दे
ही दीक्षित जी से कहने लगी कि 'यही मेरा बालक है इसको देखते ही
स्तनों से दुग्धधारा बहती है'। भट्ट जी कहने लगे कि 'प्रिये! सच है। यदि
बालक तेरा है तो अग्नि दूर हो जायगी' यही इसकी पहचान है। अनन्त
माताजी उसके समीप गईं और अग्नि दूर हो गयी। बालक ने अपना हाथ ल
किया और माताजी ने उसे अपनी गोद में उठाकर अपने पति की गोद में दि
और कहने लगी 'यह हमारे भाग्य की निधि है। जो भगवान् ने हमारे पूर्व
को आज्ञा दी थी वह आज सत्य हुई' भट्ट जी ने प्रसन्न होकर उसे
इल्लमागारू जी की गोद में रक्खा। उस समय आकाश में महोत्सव होने ल
और आकाशवाणी हुई कि "अब सत्ययुग होगा, कलियुग चला जायगा,
मार्ग का प्रचार होगा, क्योंकि इस समय भगवन्मुख का अवतार हुआ है
आपके जन्म के अनन्तर सब तरह के आनन्द मंगल होने लगे। सब उपद्रव
हुए। वहीं नन्दालय की लीला भी आई।

तदनन्तर भगवान् के भेजे हुए, दो तुलसी की माला और १ बीडा दीक्षित
ने उनके निवेदन किये। इस वृत्तान्त के अनन्तर वह बालक सनाल प्राकृ
शिशु हो गया। अनन्तर दोनों पति पत्नि (चतुर्भद्र) पुर के प्रति चले। वहाँ के
ना के अमात्य सेठ कृष्णदास ने सुना कि सपत्नीक लक्ष्मणदीक्षित आये हैं तो
सामने आया और प्रणाम कर पुर में ले गया और उनके अपेक्षित सब
तुओं का सम्पादन कर दिया। अनन्तर लक्ष्मणदीक्षित जी ने सूति का
प्रवेशादि कराके काशीकर पद्धति से पुत्र का जातकर्म संस्कार किया।
क्रमण संस्कार के दिन पुत्र को अष्टाक्षर मन्त्र की दीक्षा दी। इस ही निवास
समय सेठजी ने दीक्षित जी से पुत्रोत्पत्ति की प्रार्थना की। भट्ट जी ने कहा
सा ही होगा'। उस ही समय में स्वदेश से स्वकीय लोकों सहित दीक्षित जी
पुत्र (रामकृष्ण जी) दोनों कन्याएं (सुभद्रा सरस्वती) भार्या (यल्लमा जी) भ्राता
नार्दन भट्ट जी) और उनकी स्त्री सब वहाँ आ गये। अनन्तर दीक्षित जी उन
के साथ निवास करने लगे। कृष्णदास जी ने आपसे प्रार्थना की अतः आपने
पाल मन्त्र के अष्टादश पुरश्चरणों से साध्य सोमयाग का होम किया।

अनन्तर सेठ जी ने उनके आशीर्वाद से उत्पन्न हुए अपने पुत्र की
रणागति करवाई और उस शरणागति में सेठ जी ने बहुतेरा द्रव्य, घोडे,
लकी, गाड़ा, पांच सिपाही और मार्ग में रक्षक ये सब समर्पण किये। सेठ जी
पत्नी ने वह बालक भी दीक्षित जी के बालक (वल्लभाचार्य जी) के चरण
शरण में कर दिया। तदनन्तर आप वहाँ से काशी को चले। वहाँ जाकर आप
सब को अपने स्थान में उतार कर सायंकाल के समय स्नानादि किया।
तःकाल से तीर्थ विधि का आरम्भ किया और इतने दिन तक जो अग्निहोत्र
च्छिन्न हो गया था प्रायश्चित्त करके पुनः उसका सन्धान किया और वहाँ
वास करने लगे। आपने वैदिक, पण्डित, विद्यार्थी, प्रजा, राजा सब को अपने गुण
अपेक्षित अर्थों से सन्तुष्ट किये। इसके अनन्तर श्री वल्लभ ने अपनी बाल
लाओं से माता–पिता, दोनों बहन, भाई आदि सब स्वीयजनों को प्रमुदित
या। आपके संस्कार यथाक्रम, महोत्सवों के साथ होते रहे। आप एक ही
मय श्रवण करने से विद्या को यथावस्थित उपस्थित कर लेते थे अतएव
पको लोग **बालसरस्वतीवाक्यति** इस नाम से पुकारा करते थे। विवाद में
प बडे दो विद्वानों को विस्मित कर देते थे। तदनन्तर **लक्ष्मणदीक्षितजी** के
केशव पुनः उत्पन्न हुए इससे उनका नाम केशवपौरि ऐसा रक्खा।

तदनन्तर **अष्टम वर्ष** में **श्रीवल्लभ** के यज्ञोपवीत महोत्सव का मु
चैत्रमास में निश्चित किया गया। इस महोत्सव पर दीक्षित जी ने अपने
सम्बन्धियों को मंगल पत्रिकाएं दी और आगत मनुष्यों का स्वागत सत
किया। प्रथम वृद्धगणेश्वर का स्थापन किया। अनन्तर रात्रि में बड़े धूम धाम
साथ गणेश जी की सवारी निकाली गई। इसके पीछे **विष्णुचित् जी** उपाध
के हाथ से ग्रहशान्ति आदि कर्म कराये गये और नान्दीश्राद्ध, मण्डप प्रतिष्ठ
आपने स्वयं किये। समाश्रित मनुष्य और स्वजनों को त्रैपौरुषी (तीन पीढी
की) दक्षिणा दी और महाभोजन भी कराया। दूसरे दिन व्रतबन्ध महोत्सव हु
उसमें अपने पिता (लक्ष्मण दीक्षित जी) से श्रीवल्लभ ने सावित्र्युपदेश ग्र
किया और उसकी दक्षिणा में स्वर्णगौ समर्पण की। अनन्तर माता तथा
सब सम्बन्धियों से भिक्षा ग्रहण की और पिता को दी हुई गाय सहित वह
विष्णुचित् जी के अर्थ निवेदन की। इस तरह भट्ट जी ने सब का संतोष कि
तदनन्तर ब्रह्मचर्य व्रत में स्थित श्रीवल्लभ को पिताजी ने अध्ययन के
विष्णुचित् उपाध्याय के यहाँ भेजा। श्रीवल्लभ सकुल्यों (एक कुल वालों) के
में भोजन करते थे और स्वीय घरों से प्राप्त हुई भिक्षा गुरु के निवेदन कर
करते थे। इस समय में आपने अपनी तैत्तिरीय शाखा पढी और साङ्गोपा
यजुर्वेद की अन्यान्य शाखाएं भी पढ ली। उसके अनन्तर पिताजी ने आ
ऋग्वेद और सामवेद की शाखाओं के पठनार्थ **त्रिरुम्मलजी,** के समर्पण कि
जब **श्रीवल्लभ** ये सब पढ कर जब घर आये तो आपको साङ्ग तथा सरह
अथर्ववेद स्वयं पिताजी ने ही पढाया। इस तरह श्रीवल्लभ ने सब वेद
वेदाङ्गों का अध्ययन कर अन्यान्य कितने ही बटुओं का अध्यापन भी कि
अनन्तर आपने **आन्ध्रनारायण** दीक्षित से षट्शास्त्रों का पठन किया
दीक्षित ने प्रसन्न होकर अप्रचलित सामवेद की शाखाएं भी आपको पढ
माधवयतीन्द्र से आपने **वैष्णवशास्त्र** पढे। ज्योतिश्शास्त्रादि वेदा
धर्मशास्त्रादिउपाङ्ग, काव्यादि साहित्यग्रन्थ, आगम शास्त्र और तदुक्तकल
सब पिताजी के पास पढते हुए छात्रों के पाठन से आपको अधिगत
बाह्यागमों (नास्तिकशास्त्रों) को आपने विवाद कथा से जान लिये। इस
आप सब विद्यावानों में पूज्यतम हुए। श्रीवल्लभ के पाठक जाति सम्प्रदाय
मन्त्र सब तरह से स्वकीय ही थे। जैसे **विष्णुचित्** उपाध्याय तैलङ्ग जा
दीक्षित (सोमयजी) और बृहस्पति के अवतार थे। त्रिरुम्मल भी तैलङ्ग दी

और ब्रह्मा के अवतार थे। **विष्णुसम्प्रदायी नारायणदीक्षित द्रविड** और **सान्दीपिन मुनि** के अवतार थे। **तैलङ्ग माधवेन्द्रयति माध्वसम्प्रदायी** और **शाण्डिल्यमुनि** के अवतार थे। **लक्ष्मण दीक्षिताचार्य वसुदेवजी के**, माता **देवकी जी** के, रामकृष्ण **बलदेवजी** के, केशव **महादेव** के, सुभद्राजी और सरस्वती जी उन दोनों के, और आप **श्रीवल्लभ पुरुषोत्तम के वदन** वाक्पति (अग्नि) के अवतार थे। आप तुलसीमाला, ऊर्ध्वपुण्ड्र, गोपीचन्दन की मुद्राओं को धारण करते हुए एकादशी जयन्ती, विष्णुव्रत और भगवदाराधन किया करते थे।

एक दिन लक्ष्मणदीक्षित, हृदय में विचार करने लगे कि मेरे पुरुषार्थचतुष्टय सम्पन्न हो गया। मैंने अपने बाल्य में विद्याएं पढीं तदनन्तर गुरुओं का आराधन भी किया, अग्निसेवन भी उत्तमतया किया, श्रीमदनमोहन का लालन भी खूब किया, मेरे पूर्वाम्नाय का प्रचारक पुत्र भी उत्पन्न हो गया, और इसकी अतिमानुषी बुद्धि देखकर जानता हूं कि यह भगवदवतार ही है, अब इसके बाद मुझे इस लोक में रहकर क्या करना है। अथवा 'संभवतः और भी कुछ कर्तव्य अवशिष्ट हो' ऐसा सोचकर ध्यान कर रहे थे कि उनकी समाधि में **भगवान्** कहने लगे। "हे दीक्षितजी आपके घर में '**श्रीवल्लभ**' इस नाम से मैं ही अवतीर्ण हुआ हूँ इसमें सन्देह मत करो। आप अपने धर्म से अपने सन्तान सहित गतैषण और कृतकृत्य हो, आपको कोई कर्तव्य अवशिष्ट नहीं है अब आप मेरी सेवा करो और मेरे लोक को आ जाओ"। इसके बाद दीक्षित जी ने यह सब वृत्तान्त अपनी पत्नी 'इल्लमागारू' जी से कहा। और मकरार्क आने पर **दीक्षित जी वैकुण्ठ** को प्राप्त हुए। आपकी दूसरी पत्नी 'यल्लमाजी' आपके ऊपर सती हुई। रामकृष्ण जी ने वार्षिक श्राद्ध पर्यन्त का सब और्ध्वदैहिक कर्म किया और केशव का चौलकर्म करके गयाश्राद्ध के लिए **गयागमन** किया।

इधर माताजी की आज्ञा से ये सब लोग प्रयाग मार्ग से चित्रकूट और **भृगुतुङ्ग** देखते हुए **चम्पारण्य** पहुँचे। वहाँ **महानदी** के तट पर वेदिका के ऊपर **स्वभू, स्वयम्भू, विधु, शम्भु** आदि सब शिष्यों सहित विराज कर **श्रीवल्लभ** ने श्रीभागवत सप्ताह की और आपके शिष्यों ने वहाँ एक कूंआ भी खुदवाया और रामकृष्ण जी की प्रतीक्षा में **वसन्तदोलोत्सव** भी वहीं हुआ। तदनन्तर **अमरकण्टक** देखते हुए **सिद्धिपद** में पहुँचे। वहाँ **श्रीवल्लभ** ने निजशिष्यता को चाहते हुए माध्व संप्रदायियों के महन्त सशिष्य **सर्वेश्वर** को

भगवदाज्ञानुसार शिष्य किया। तदनन्तर **वृद्धिनगर** पहुँचे। वहाँ **एक** सेठ के चार पुत्र थे उनमें सबसे छोटा **दामोदर** भगवान् की लीला में से गुरु की सेवा के ही लिए आया था और गुरु **श्रीवल्लभ** की प्रतीक्षा कर रहा था। उसने जब आपको आये हुए देखा तो अपना भ्रातृदाय छोड़कर आपके चरणों में आया और आपने उसको अङ्गीकार किया तथा मन्त्र और तुलसी माला देकर कृतार्थ किया।[1] फिर यहाँ से चले और अपने अग्रहार (ग्राम) में **पहुँचे**। वहाँ स्वकीयों ने भगवदान्दोलिका का वर्णन किया। इसके अनन्तर श्रीवल्लभ तथा साग्निदीक्षित रामकृष्ण का अभिषेक कर गृहप्रवेश किया और उसका उत्सव किया। केशवपौरिका व्रतोत्सव भी किया। वहाँ बहुतेरे विद्वान् लोग श्रीवल्लभ के विद्योदय को सुनकर विवाद को आये और विवाद में पराजित होकर आपके शिष्य हो गये। आपके भूआ के पुत्र शम्भु भट्ट ने भी आपसे गोपालमन्त्र की दीक्षा ग्रहण की।

इसके अनन्तर 'श्री इल्लमागारू जी' के शोकापनोद के वास्ते तथा उनके लेने के लिए विद्यानगर से वावदूक आया। उसके मुख से **श्रीवल्लभ** ने "विद्यानगर की राजसभा में श्रौतस्मार्त और वैष्णवों का विवाद हो रहा है" ऐसा सुना। सुनते ही **श्रीवल्लभ** ने वहाँ जाने के लिए माताजी से कहा। 'मातः! मुझे दक्षिणयात्रा करनी है तथा विद्यानगर भी जाना है और पितृसङ्कल्पित तीर्थयात्रा भी करनी है। अतः आप आज्ञा दें तो मैं कार्यसिद्धि करूँ'। पहले तो माताजी ने कहा कि 'जैसी आपकी इच्छा'। इस आज्ञा के अनुसार जब **श्रीवल्लम** पधारने लगे तो पति और पुत्र दोनों के विरह से सन्तप्त हुई माताजी ने पुनः कहा। 'यदि आप पधारते हैं तो मुझे भी साथ ले चलें क्योंकि मैंने आपके लिए **श्रीव्यङ्कटेश जी** के दर्शन तथा उपायन (भेंट) का संकल्प किया था वह भी सिद्ध हो जायेगा'। श्रीवल्लभ कहने लगे। 'बहुत अच्छा मामाजी का विचार भी सिद्ध हो जायेगा'। जब ये विचार आपके पितृव्य 'जनार्दन भट्ट जी' ने सुने तो उनने सामान पहुँचाने के लिये घोड़े आदि का नियोजन किया। तदनन्तर **श्रीवल्लभ** मन्दिर में गये और पूर्वोक्त भट्ट जी से एक शालिग्राम शिला और एक श्रीमद्भागवत की पुस्तक माँगी। माता ने एक हरिस्वरूप माँगा। जनार्दन भट्ट जी बोले कि 'यह शालिग्राम शिला ब्रह्माजी से पूजित है तथा कृष्णावतार के समय भगवान् के मुख से स्पृष्ट है अतः यदि आप इसे ले जावें तो अच्छी तरह

१— आचार्य चरण के प्रधान शिष्य श्रीदामोदर दास जी यही हैं।

रक्खें, यह दूसरी **मुकुन्दरायजी**[1] की मूर्ति श्रीगोविन्दाचार्य जी ने दी है, और ये **बालकृष्णजी**[2] श्रीविष्णुमुनि ने दिये हैं, और ये **श्रीमदनमोहन**[3]जी यज्ञनारायण जी के यज्ञकुण्ड से प्रकट हुए हैं और ये पुस्तक गङ्गाधराचार्य जी की है, इनमें से जो आपको रुचे वह ग्रहण करें' यह कह देने के पश्चात् आपने **शालिग्रामशिला, मुकुन्दजी** और **श्रीमद्भागवत की पुस्तक**, ये ग्रहण किये और वहाँ से प्रस्थान किया।

प्रथमाऽवच्छेद

इसके अनन्तर सिद्ध पद से आये हुए लक्ष्मणदीक्षित जी के शिष्य, केतुकमण्डलु और लकुटालोकि नामक दो विरक्तवीरों को रक्षा के लिए साथ लिये। शम्भु भट्ट को पाक करने के लिए, स्वभू और स्वयम्भू को विवाद के वास्ते तथा काशी से आये हुए गुर्जर और गौड सेवकों को सेवा के लिये साथ लिये। शालिग्राम जी और मुकुन्द जी को ताम्बे की पेटी में धरकर **श्रीवल्लभ** ने अपने मस्तक पर धर लिये। **दामोदर** ने अपने शिर पर पुस्तक धारण की। मार्ग में श्रीवल्लभ चरणारविन्दों से चलते थे। जहाँ पर उतरते वहाँ **माताजी** स्नान कर एकान्त में पाक निर्माण करतीं। **श्रीवल्लभ** स्नान तथा पुण्ड्रादि करके प्रीति से श्रीमुकन्द की सेवा करते। उनके बाल भोग में मक्खन, मिश्री, मीठे फल, सत्तू आदि समर्पण कर सन्ध्यावन्दन तथा उपासन करते और शालिग्राम जी का पूजन यथाविधि मन्त्रों से करते। इसके बाद शेषाह्निक तथा माध्याह्निक कर्म करते। अनन्तर जब पाकसिद्धि हो चुकती तो तीन पत्तल में सामग्री धर के एक **श्रीमुकन्द** को दूसरी शालिग्राम जी को तीसरी श्रीभागवत के भोग में धरते। फिर शम्भुभट्ट आचमन कराके वैश्वदेव करते। माताजी चरणामृत का पान तथा अपना आह्निक करतीं। तदन्तर श्रीमद्भागवत को आचमन तथा ताम्बूल समर्पण करने पर **श्रीवल्लभ** नीराजन करते और फिर सभी प्रदक्षिणादि करते। इतना कर्म हो जाने के पश्चात् माताजी उन तीनों पत्तलों में से एक पत्तल ब्रह्मचारी श्रीवल्लभ के लिये परोसतीं। दूसरी शम्भुभट्ट

1– यह स्वरूप संप्रति काशी में विराजते हैं।

2– यह स्वरूप श्रीनाथद्वारा में श्रीनाथजी के समीप में हैं।

3– यह स्वरूप काम्यवन में विराजते हैं।

को, और वैश्वदेव शेष अतिथियों को देतीं। भोजन के अनन्तर श्रीवल्लभ को आचमन तथा मुखवास समर्पण करतीं। जब सब मनुष्य भोजन कर चुकते तब श्रीवल्लभ का उच्छिष्ट दामोदरदास को देतीं और तृतीय पत्तल के अन्न को आप भोजन करतीं। इस तरह प्रातः काल का आह्निक करके चलते। जब सायङ्काल के समय ठहरते तब पुनः यथायोग्य कर्म करते। रात्रि को श्रीवल्लभ श्रीभागवत की कथा करते। इस तरह चलते हुए **कृष्णा नदी** पर पहुँचे। वहाँ गाणपत्य पुष्पदन्त ने श्रीवल्लभ से विवाद किया। जब पराजित हुआ तो गणेशरूप धारण कर पृथ्वी पर सूंड पछाड़कर डराने लगा। तब गुरु की आज्ञा से वेत्रभृत् वीर ने नृसिंह स्वरूप धारण कर और उसे धमकाकर भगा दिया। फिर कृष्णा को पारकर **मङ्गलप्रस्थ** पहुँचे। वहाँ (पना) नृसिंह के दर्शन किये और मिश्री का पना अर्पणकर श्रीमद्भागवत का पारायण किया। वहाँ रहने वाले ढुण्ढ़िदीक्षित को श्रुति की अनुलोम[1] और विलोम कथा से जीता। वहाँ से चलकर **कुण्डिनपुर** पहुँचे। कुण्ड़िनपुर के विद्वानों ने श्रीवल्लभ से प्रतिबिम्ब वाद में प्रश्न किया। **श्रीवल्लभ** ने उसका अच्छा प्रतिपादन किया। वहाँ से आगे **काळश्रीग्राम** में विद्वानों ने ख्यातिवाद में प्रश्न किया उसको आपने विशदतया वर्णन किया।

तदनन्तर वहाँ से चलकर व्यंकटाद्रि के नीचे विराजमान श्रीराम का पूजन किया और छः पर्वतों का उल्लंघन कर **श्रीलक्ष्मण बालाजी** के दर्शन किये। उनको प्रणाम कर तथा उपायन (भेंट) धरकर उनका चरणोदक तथा नैवेद्य लिया। वहाँ श्रीवल्लभ वैष्णवशास्त्रों को ढूँढ़ने के लिए कितने ही समय तक ठहरे।

वहीं माताजी ने स्वप्न में **श्री लक्ष्मण दीक्षित जी** को **लक्ष्मणबालाजी** के मुख में प्रवेश करते हुए देखे और उस स्वप्न पुत्र से कहा। पुत्र ने कहा ठीक है यह आपको वांछित भगवान् ने दिखाया है। वहाँ से चलकर आप **वेणी नदी** के किनारे पहुँचे। वहाँ रविनाथ ने कहा। आप वैदिकों के साथ वेद में परीक्षा दें। श्रीवल्लभ ने परीक्षा दी परन्तु उसको कब सन्तोष होने वाला था। उसने एक से लेकर कम से कम सौ पद तक एक–एक पद छोडकर वेद का उच्चारण किया। श्रीवल्लभ ने उन सभी का विलोम उच्चारण करके उसे जीता। उसके पश्चात् विद्वानों ने अन्धकारवाद में प्रश्न किया। श्रीवल्लभ ने उसका उत्तमतया उत्तर दिया।

1– वेदका पाठ आरम्भ से अन्त तक तथा अन्त से आरम्भ तक (अर्थात् ओधा सूँधा पाठ

इसके पश्चात् आप **विद्यानगर** में मामा के घर पहुँचे। वहाँ 'शैव वथा स्मार्तो ने वैष्णवों को जीत लिये' यह सुना। प्रातःकाल आपने राजसभा में कमण्डलु नामक शिष्य को भेजा पीछे से आप भी राजसभा में पधारे। राजा और विद्वान् दोनों ने आपका सत्कार किया। विद्यातीर्थ ने आपको खैंचकर अपने आसनार्ध पर बिठाया तब श्रीवल्लभ राजा से बोले। किस विषय में विवाद है? राजा ने कहा 'स्मार्त लोग ब्रह्म को निर्धर्मक कहते हैं और वैष्णव लोग सधर्मक'। तब तो आप कहने लगे हम तो विष्णुस्वामीजी के सम्प्रदायी, सधर्मक ब्रह्म के उपासक, वैष्णव हैं। अतः उस ही पक्ष का साधन करेंगे। यह कहकर उसका उपपादन करने लगे। उसमें यतिराज के पक्ष वालों ने बहुत से उत्तर कहे। श्रीवल्लभ ने उनके कनिष्ठ, मध्यम, उत्तम, जल्पों का तत्काल खण्डन किया। इस तरह से पहले दिन दो प्रहर तक सभा हुई। दूसरे दिन से लेकर सातदिन तक आपका यतिराज के साथ विचार हुआ। उसके पश्चात् दश दिन तक बाह्य, तार्किक, मीमांसक तथा साङ्ख्यों से ख्यातिवादादि में विचार हुआ। तदनन्तर तीन दिन तक मिथ्यात्वसाधन के लिये प्रवृत्त गाङ्गभट्ट ने 'स्थानिवत्सूत्र में आदेश, आगम तथा प्रत्ययों की आगमापायिता से शब्दों का अनित्यत्वही आता है' इसका साधन किया। श्रीवल्लभ ने उसका प्रत्युत्तर इस प्रकार दिया।

शब्द तो नित्य ही हैं। अतएव भर्तृहरि ने 'आदेश आगम तथा प्रत्ययों की कल्पना केवल बालबोध ही के वास्ते वर्णन की है' और दृष्टान्त से अर्थों की भी अनित्यता सिद्ध नहीं हो सकती। तदनन्तर सात दिन तक अद्वैतवादियों ने जिन वैष्णव सिद्धान्तों का खण्डन किया था उन सब का मातुल चरण ने राजा की आज्ञा से श्रीवल्लभ के आगे प्रतिपादन किया। श्रीवल्लभ ने उन सब खण्डनों का खण्डन किया और अपने सिद्धान्तों का पुनः प्रतिपादन किया। श्रीवल्लभ के सहायता से वैष्णव पुनः विजय को प्राप्त हुए।

जिस समय सभा में **श्रीवल्लभ की जय** हुई तब वैष्णवलोग तो अत्यन्त प्रसन्न हुए परन्तु विपक्षी लोग खिन्नचित्त और अत्यन्त विस्मित हुए। इसके अनन्तर श्रीवल्लभ अपने स्थान पर पहुँचे। वहाँ **माध्वसंन्यासी व्यासतीर्थ** आये और **श्रीवल्लभ** से कहने लगे। 'आप मेरे आदेश को स्वीकार करिये और मेरे सिंहासन पर आरूढ़ होकर मेरे मार्ग का प्रचार कीजिए'। श्रीवल्लभ ने आज्ञा की जैसी भगवदिच्छा होगी वैसा करूंगा। उसी दिन रात्रि में भगवान् ने

श्रीवल्लभ से आज्ञा की। आप विष्णुस्वामि संप्रदाय के आचार्य होओ, व्यास ती
के आदेश को मत स्वीकार करो'। दूसरे दिन सूर्योदय के समय ही **श्रीवल्ल**
अपने नित्य तथा नैमित्तिक कर्म से निवृत्त हो चुके। इधर कृष्णदेव राजा
नित्यकर्म से निवृत्त होकर तथा रुई के वस्त्र पहनकर, ज्योतिषी के निर्दि
समय से पूर्व ही अपने मन्त्री सामन्त तथा भृत्यों सहित अपने प्रांगण में बना
हुए 'यथोचित चँदुआ, जाजम, काच, मणिमाला, कदलीस्तम्भ, तोरण, पता
आदि से अलंकृत मण्डप में अपने यज्ञ के कनकाभिषेक के अनुष्ठानार्थ संपादि
कनककलश तथा सभा के साहित्य को सँभालने के लिए पहुँचा। वहाँ जाक
यथास्थान स्थित पदार्थों से सुशोभित सभा सदन को देखकर राजा अत्य
प्रसन्न हुआ और उसी समय अपने मन्त्री को आज्ञा दी।

'मेरे वांछित, सम्पूर्ण विद्वज्जनों के विजयी, श्री पुरुषोत्तम वदनानलावता
सोमयाजी, द्वादशतन्त्र स्वतन्त्र, श्रीलक्ष्मण भट्टनन्दन के कनक कुसुमाभिषे
पूर्वक, आचार्यसम्राट् सिंहासनाधिरोहण के सम्पादनार्थ, पूजास्पद व्यासती
विद्यातीर्थादि महन्त तथा सब विद्वानों को, बान्धवों को, सामन्त, चतुरंगचमू त
सेनानायकों को हाथी घोडे रथ पालकी विरक्तवीर नटनर्तक गन्धर्व अप्सरा आ
सब के समूहों को बुलाओ। इस आज्ञा के अनुसार मन्त्री ने उक्त मनुष्यों
आमन्त्रणार्थ दूत भेजे और थोडे ही समय में दूतों ने इन सब मनुष्यों
आनयन किया। जब सब मनुष्य इकट्ठे हो चुके तो राजा यथोचि
सम्मुखगमन–स्वागतवचन, वरासन समर्पण आदि से सबका सत्कार कर हा
जोड़कर कहने लगा

'हे निरवद्यहृदयविद्वानों! अब मेरे वांछित कनकाभिषेक महोत्सव
समय प्राप्त हो गया है। अतः आचार्य पद प्राप्ति के लिए **श्रीवल्लभ**
कनाकाभिषेक का विचार कर आप मुझे शीघ्र आज्ञा दीजिये'।

इस विज्ञापन को सुनते ही भगवद्भक्त और शिव, ब्रह्मा, विष्णु
आम्नायों को प्रचार करने वाले **व्यासतीर्थादि** तीर्थवर अत्यन्त प्रसन्न होक
कहने लगे। 'हाँ अवश्यमेव करना चाहिये'। इसके अनन्तर विद्यागुरु आ
स्मार्ताचार्य तथा अन्य भगवत्सेवक विद्वद्गण भी 'हाँ बहुत उत्तम है अव
करना चाहिये' यों कहने लगे। यह कहते ही सुकृति राजा ने पुरोहित जी
साथ बान्धव मन्त्री, चतुरंग–सेना पालकी आदि सब सामान **श्रीमदाचार्यचर**

े समानयनार्थ भेजे। वे सब श्रीमदाचार्य जी के बाहर के आंगन में पहुँचे। ांगन में जाकर इन सब ने अपने प्रवेश के लिये विज्ञापन करवाया। विज्ञापन े पहुँचते ही आचार्य चरण ने **केतुकमण्डलु** को लेने के लिए भेजा। वहाँ ाकर इन सब ने **श्रीलक्ष्मणनन्दन** के दर्शन किये और प्रणाम करके राजा की जी हुई भेंट आपके चरण कमलों में निवेदन की। अनन्तर हाथ जोडकर ापको सभा सदन में पधारने के लिए राजा की प्रार्थना प्रियवाणी से श्रवण राई। उस समय श्रीमदाचार्य चरण के नेत्रकमल के संकेत को जानकर **ामोदरदास जी** ने 'बहुत अच्छा' कहकर आपकी आज्ञा उनको सुनाई और ाचार्यचरण को माध्याह्निक कर्म से निवृत्त हो जाने पर गमन के अनुरूप षधारण कराया। इसके अनन्तर पालकी में श्रीमदाचार्य चरण की चरणपादुका ी चौकी रखकर तथा श्रीमदाचार्य को आगे कर राजा की सेना सहित पूर्वोक्त ण्डप में पधारे। उस समय में अनेक तरह के वाद्य तथा महोत्सव देखने को म्मिलित होने वाले नर नारी तथा बालकों के शब्दों से सम्पूर्ण नगर गूँज रहा ा चारों ओर से अनेक प्रकार के कुसुमों की धारासी चल रही थी। कहिये तो ला उस शोभा को कोई क्या वर्णन कर सकता है!।

इधर राजा भी नाना प्रकार के शब्द तथा अनेक पथिकों के पहुँचने से ापके समीपागमन को जानकर स्वजनों सहित आपके समीप पहुँचा और ाष्टाङ्ग प्रणाम, भेंट तथा स्वागत वचन से आपका अत्यन्त सम्मान करने गा। मार्ग में परिचारकों द्वारा पाद्यपट्टांशुक (पगपावण्डा) विछवाये गये और ामरादिक से आपका परिचार करते हुए राजा आपके हाथ में हाथ धरकर पने सुन्दर प्राङ्गण में लाया। फिर सब विद्वानों ने श्रीमदाचार्य चरण को मस्कार किया। आपने भी सबसे यथायोग्य नमस्कारादि किये। राजा ने ापको सुन्दर आसन देकर विश्रान्त किया। अनन्तर श्रीमदाचार्य चरण की नुज्ञा से शम्भुभट्ट हाथ उठाकर सभासद विद्वानों से कहने लगे। 'जो इस विवाद में हमारे संभ्रम से स्खलित, न्यूनातिरिक्त तथा कठोर वचन हुआ हो अथवा जो कुछ आप लोगों के कथन में अवशिष्ट रहा हो वह इस समय कहें हम उसका समाधान करेंगे और क्षमापन भी करेंगे। तब तो पण्डित लोग कहने लगे वाह कहीं वाक्पति की वाणी में भी स्खलित हो सकता है? और बडे मनुष्यों का परुषभाषण तो शिक्षा के लिये होता है उससे कहीं द्रोह थोडा ही हो सकता है। इस तरह विद्वानों का सौहृदसंलाप हो रहा था कि गणक के निवेदन किये

हुए सद्‌गुण सम्पन्न समय में पुरोहित ने विष्णुरूप अतिथि श्रीमदाचार्य
वैष्णवी सपर्या का विधान करने के लिये तथा वैष्णवों के उद्धारार्थ वैष्णवाचार्य
का सम्पादन करने के लिये वैष्णवाचार्य तथा अन्य सभी की सम्मति
श्रीमदाचार्य को उठाकर ऋत्विक् उपाध्याय तथा राजा के सम्मुख शुद्ध सु
के पट्टा के ऊपर विराजमान किये। इसके अनन्तर ऋत्विक् पुरोहित सहि
राजा ने ब्राह्मण शंभु आदि भट्ट तथा वैष्णवगणों को नवीन राजविभूतियों
समर्पण कर संकल्पादि पुरःसर पाद्य, आचमनादि से यथाविधि पूजन कर, पाव
तीर्थजलों से महाभिषेक तथा साम्राज्याभिषेक के मन्त्रों से आप
आचार्यसम्राज्याभिषेक किया। तदनन्तर श्रीमदाचार्य दूसरे पट्टे पर बिठ
गये और आपके शिष्य गुर्जर गोविन्दराम, मुकुन्दराम, शंकरानन्द, श्यामान
आदि के लाये हुए जल से शम्भुभट्ट ने आपको पुनः स्नान करवाया। पश्चा
दूसरे वस्त्र से आपका शरीर पोंछा और नवीन कोपीन, कटिवस्त्र, उत्तरी
यज्ञोपवीत, तुलसीकाष्ठ माला, मृगचर्मादि पहनाकर ऊर्ध्वपुण्ड्र, तिलक, गोपीचन्द
की षण्मुद्रा से अलंकृत और पादुका धारण किये हुए श्रीमदाचार्यचरण
कनकसिंहासन के आगे पधराये। तदनन्तर व्यासतीर्थादि वैष्णवाचार्य त
अन्य आचार्य, वैदिक, पण्डित सभी की सम्मति से राजसिंह कृष्णदेव
श्रीमदाचार्यों को मखमल के आस्तरण से अलंकृत सिंहासन पर विराजमा
किये और आपका अवशिष्ट पूजन हो जाने के पश्चात् आप राजदेव विभू
से संयुक्त किये गये। उस समय शम्भुभट्ट ने श्वेतच्छत्र, हरिभट्ट
सूर्याभिमुखवारण (सूरजमुखी), शंकरानन्द और श्यामानन्द ने चामर,
आचार्य और स्वयम्भू आचार्य ने मोरछल, केतुकमण्डलु और लकुटालोकि
सोने की छडी गोविन्दराम और मुकुन्दराम ने चाँदी की छडी, रामभट्ट
केशवभट्ट ने चाँदी के शंख चक्र दण्ड़ तथा अन्य वैष्णवों ने घण्टा, झाल
गोमुख आदि बाज़े ग्रहण किये।

तदनन्तर तिलक, पुष्पमाला, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, मुखवास इत्या
से आचार्य चरण का पूजन किया गया और बहुत सा सुवर्ण निचय भेंट
किया गया। और उस अवसर में राजा ने विज्ञापन किया कि ये सब सुवर्णपा
भी मैंने आपके निवेदन किये हैं इनको भी आप स्वीकार करें। तब
श्रीमदाचार्य के नेत्रसंकेत को जानकर दामोदर दास जी सब सभासदों
सुनाते हुए राजा से कहने लगे। राजन्! इन सबके सुवर्ण पात्रादि को

ीमदाचार्य चरण स्नान के जल की तरह स्पर्श भी नहीं कर सकते और शरणागत के अलावा अन्यजन की भेंट भी आप ग्रहण नहीं करते हैं' इस नियम के अनुसार आचार्यचरण इसमें से कुछ भी ग्रहण नहीं करेंगे। जब इन वचनों से राजा पर कुछ उदासी का असर विदित हुआ तो दामोदर दास जी फिर कहने लगे कि 'ये सभासद लोग दूर दिशा से आशाबद्ध आये हैं। अतः ये सुवर्ण पात्र तथा भेंट इन सभी को वितीर्ण कर दीजिये'। तदनन्तर राजा ने अपने उपाध्याय और पुरोहित से विचार करके वह द्रव्य यथोचित विभाग के अनुसार व्यासतीर्थादि आचार्यों के शिष्यों को तथा आये हुए वैदिक, पण्डित, ब्राह्मण, धर्मशाला, कुंआ, बावड़ी, बगीचा, कन्यादानादि धर्मकार्यार्थियों को, मन्दिर के अधिकारियों को और कैदी, दीन, अन्धपंगुआदि सबको वितीर्ण कर दिया। अनन्तर व्यासतीर्थादि आचार्यों ने विष्णु स्वामिसम्प्रदायी आचार्य हरिस्वामी और शेषस्वामीजी के हाथ से श्रीमदाचार्यों के आचार्य साम्राज्य तिलक करवाया तथा स्वयं भी अपने हाथ से सब आचार्यों ने तिलक किया और उसके अनन्तर श्रीमदाचार्य चरणों के **"श्रीवेदव्यासविष्णुस्वामि सम्प्रदाय समुद्धारसम्भृत श्रीपुरुषोत्तमवदनावतार सर्वाम्नाय संचार वैष्णवम्नाय प्राचुर्यप्रचार श्रीबिल्वमङ्गलाचार्य सम्प्रदायिकार्पित साम्राज्यासनाखण्ड भूमण्ड़लाचार्यवर्यजगद्गुरुमहाप्रभुः श्रीमदाचार्यः"** यह विरुदावलि समर्पण की गई।

तदनन्तर कुटुम्ब तथा स्वजनों सहित राजा ने शरणागति की प्रार्थना की। आचार्यचरण ने उनको स्नान कराकर 'शरणाष्टाक्षर मन्त्र' दिया और हरि तथा गुरु की प्रसादित 'तुलसी काष्ठमाला' भी अर्पण की। राजा ने उन सब (स्वजनों) के साथ सुवर्ण के थाल में धरकर सात हजार स्वर्णमुद्रा (अशर्फी) आपके निवेदन की। अनन्तर अनेक जन्मों के दुःख को दूर करने वाले गुरुचरणोदक के सम्पादन करने के लिये सिंहासन के आगे चौकी रखी और उस चौकी पर श्रीमदाचार्य की चरण पादुका धरकर 'चरणंपवित्रं' इत्यादिमन्त्रों से उनका प्रक्षालनादि पूर्वक पूजन करके उस तीर्थ को पात्र में ग्रहण करके सकुटुम्ब नरदेव कृष्णदेव ने स्वजन और प्रजा सहित उस तीर्थ का पान किया और, शिर पर धारण किया। तदनन्तर हस्तप्रक्षालन कर अवशिष्टपूजन का आरम्भ किया। उसमें 'हरिस्तोत्र' से नीराजन और गुरुस्तोत्र से पुष्पांजलि करने के पश्चात् सबने स्तुति की। उसके पश्चात् राजा सहित सब मनुष्यों ने साष्टांग

प्रणाम करके श्रीमदाचार्य चरण के सिंहासन की प्रदक्षिणा की। अनन्तर रा
ने प्रसन्न होकर समागत व्यासतीर्थादि आचार्यों तथा विद्वानों और आचार्यच
के परिकर का सन्तोष करने के लिये सबका यथाविधि समर्चन करके भेंट आ
से यथायोग्य समर्हण किया। नारायणाचार्य तथा द्रुहिणाचार्य को दो विष्णुध
का आधिपत्य, शम्भुभट्ट को ग्राम, हरिभट्टादिकों को यथायोग्य धराद्रविणादि
समर्हित किये। तदनन्तर राजा ने प्रणाम करके आचार्य चरण से प्रार्थना की
'हे नाथ! मेरे अर्पित को ग्रहण कर मुझे सनाथ कीजिये'। इस प्रार्थना
अनन्तर श्रीमदाचार्यों ने अपने करकमल से उन अशर्फियों में से ढूँढ़कर स
दैवीमुद्रा निकाली और भगवान् के आभूषण बनाने के लिए दामोदरदास जी
हाथ में दी। ये अशर्फियें दीनदास क्षत्रिय ने भगवान् के लिये अपनी विशु
आजीविका के षष्ठ भाग के विभाग में से रक्खी थीं वे राजा कृष्णदेव के भण्ड
में आ गईं थी। अवशिष्ट द्रव्य के श्रीमदाचार्य चरण ने पुरोहित के हाथ से च
विभाग करवाये। उसमें से एक भाग धर्मकार्य के अर्थ हरिभट्ट के हाथ से मा
को समर्पण किया। दूसरा भाग शम्भुभट्ट के हाथ से पिताजी के लेनदारों
दिवाया। तीसरा भाग श्री (पाण्डुरङ्ग) बिट्ठलनाथ प्रभु के भूषण के लिए उन
अधिकारी को समर्पण करवाया। चौथा भाग धर्मकार्य के लिए मातुलचरण
पास रक्खा। तदनन्तर राजा ने श्रीमदाचार्यों को अपने स्थान पधारने की प्रार्थ
की और हाथ जोड़कर कहने लगा कि 'निजदास के उचित किसी कार्य के लि
आज्ञा कीजिये'। तब श्रीमदाचार्यों ने इस प्रकार आज्ञा की।

'राजन्! तुम गृहस्थाश्रम के धर्मों का आश्रय कर प्रजाओं की रक्षा क
रहना, सदा भगवान् की सेवा करना और प्रायः भगवद्भक्तों की ही संग
रखना, विद्वानों को आजीविका देकर उनको जगत् के शिक्षण में नियुक्त कर
दीनों पर दया करने से, न्याय से, तथा विनय से अचल कीर्ति का विधा
करना'।।

अनन्तर राजा ने उस उत्सव के हर्ष में अपराधी बंदियों को काराग
से छोड दिये, सब प्रजा के सुख के लिये नाना प्रकार के करों का भी परावर्त
कर दिया। अपने कुटुम्बी लोग, स्त्री, अमात्य, नौकर, चाकर, फौजी मनुष
नटनर्तक, गन्धर्व तथा अन्य सब उपस्थित जनों का खूब दानमान से यथोचि
सन्तोष किया। पश्चात् सब स्वजन सामन्त तथा सैन्य सहित बडे गीतवादि
के साथ आचार्यचरण की पादुकाओं को पालकी में पधराकर स्वयं भी पहुँचा

को तैयार हुआ। पण्डित और वैदिकों से नमस्कृत आचार्यचरण भी उनको नमस्कार करते हुए, छत्रचामरादि राजविभूतियों से उपलक्षित होकर तथा राजा के हाथ में हाथ रखकर, पादुकाओं से चलते हुए, व्यासतीर्थादि आचार्य तथा विद्वानों सहित राजसेना के मध्य होकर पधारे।।

इस समय अनेक प्रकार के वादित्रों से सब मनुष्यों को आपके आने का प्रबोध हुआ। अतः सम्पूर्ण पुरवासी स्त्री और पुरुष अपने अपने महल, हवेली, चौबारा झरोखा, दरवाजा आदि पर इकट्ठे हुए और आपके ऊपर पुष्पों की वृष्टि करते हुए प्रणाम करने लगे। इस तरह चलते हुए आप मातुलचरण के गृहद्वार पर पहुँचे। मातुलचरण ने सम्मुखोपसर्पणादि से आपका सादर आह्वान किया। अनन्तर आपने गृह के भीतर प्रवेश कर माता, मातामही, मोसी, मामा आदि को प्रणाम किया और उनने आपको आशीर्वाद दिया। राजा ने भी अन्य आचार्यों का प्रणामादि सन्मान कर उनको अपने 2 स्थान पर पहुँचाये। तदनन्तर वैष्णवधर्म जानने के लिये सपरिकर राजा किंचित्काल श्रीमदाचार्यचरण के पास बैठा। आचार्यचरण ने "दैवत्व से तथा गुरु के अनुग्रह से जब शरणागति हो चुके तब सदा कण्ठी तथा तिलक धारण करता रहे, चारों जयन्ती तथा एकादशी का व्रत भी नियम से करता रहे, भगवत धर्म का आचरण, हरिकथा, आचार्य–भक्तों का पूजन ये भी विधि से करे और पाप, आचार्य विमुख, बिना प्रसादी का भोजन, और अन्याश्रय, वर्जन करे" इस तरह उपदेश दिया। पश्चात् अपने महल जाने की आज्ञा लेकर राजा ने आचार्य चरण को साष्टांग प्रणाम किया और आपके दिये भगवत्प्रसाद तथा माला को शिर से धारण कर तथा पुनः प्रणाम कर अपने आलय में पहुँचा।।

इस तरह जब आपको आचार्य पद प्राप्त हो चुका तदनन्तर एक दिन श्रीमदाचार्य चरण उषः काल में ध्यान कर रहे थे कि उस समय योगबल से वृन्दावन निवासी **श्रीबिल्वमंगलाचार्य** आपके पास आये। आचार्य चरण ने उनका प्रणामादि से सत्कार किया और श्रेष्ठ आसन पर स्थापित कर आपसे आने का कारण पूछा। तब तो वे आपकी प्रशंसा कर कहने लगे। जब विष्णुस्वामिसम्प्रदाय पृथ्वी में बिरल हो गई तब मैं भगवदाज्ञा के अनुसार वृन्दावन में एक तरुवर के नीचे रहने लगा अब उन्हीं के आज्ञानुसार आपके उपदेशार्थ मैं यहाँ आया हूँ।

अब मैं पहले अपना पूर्ववृत्तान्त कह सुनाता हूँ। द्रविड देश में पाण्ड्य विजय नामक एक राजा हुआ था। उसके पुरोहित सद्धर्मनिधि और विष्णुभक्त **देवस्वामी** नामक थे। उनके पुत्र विष्णु के अवतार विष्णुस्वामी हुए। पिता ने जब उनके यज्ञोपवीतादि संस्कार कर दिये तब तो वे वेद तथा वेदान्तों को पढ़कर बाल्यावस्था ही में **बालगोपालस्वरूप भगवान्** को बालवृत्ति से सेवन करने लगे। इस तरह उनने एक वर्ष तक सेवन किया पर जब भगवान् प्रत्यक्ष नहीं हुए तो निरशन व्रत (उपवास) करके भगवान् का सेवन करने लगे। फिर क्या था परमदयालु **श्रीगोपाल** सातवें ही दिन परमरमणीय मूर्ति से प्रकट हु और कहने लगे। 'हे बाल! तू क्यों खिन्न होता है तेरा समर्पित पूजन मैंने ग्रहण कर लिया। अब तू शिव जी के समर्पण किये हुए मेरे सम्प्रदाय का प्रचार कर क्योंकि कलि के प्रवर्तन होने पर बुद्ध ने वेदधर्म की निन्दा कर उसको हिंसाप्राय साधन कर दिया। अतः जनमेजय के यज्ञ के अन्त में प्रायशः वैसे धर्मों का निवर्तन कर ऋषियों ने जिस सात्त्विक धर्म का प्रचार किया उसका भी प्रचार कर। श्रीशुकदेव जी के कहे हुए भागवतोक्त मत को और श्रीव्यास पाद के अभिप्रेत वेदान्त को भी उनसे सीखकर विस्तृत कर'। यह कहकर तथा गोपाल–मन्त्र, गोपाल मूर्ति और गोपालरहस्य देकर बालगोपाल भगवान् अन्तर्ध्यान हो गये। तदन्तर जब विष्णुस्वामी सब विद्या पढ़कर गुरूकुल से अपने घर आये तब अपने घर में श्रीगोपाल मूर्ति का स्थापन कर आपके आज्ञापित अर्थ का प्रचार करने लगे। एक समय वे ही विष्णुस्वामी, कृष्णद्वैपायन (वेदव्यासजी) को देखने के लिये कितने ही शिष्यों सहित गन्धमादन पर्वत पर गये। वहाँ उन्होंने हिमाचल के शिखर पर ऋषिगण से युक्त श्रीवेदव्यासजी को देखकर उनको प्रणाम किया और जब उन्होंने आदर से पूछा तो हाथ जोड़कर कहने लगे

संप्रदाय की प्राप्ति के लिये तथा सन्मार्ग की प्रवृत्ति के लिये भगवान् ने मुझे भेजा है अतः मैं आपके चरणारविन्द के शरण में आया हूँ। तदन्तर श्रीव्यासजी ने 'बहुत अच्छा आप उपदेश ग्रहण कीजिये' यों कहकर स्नान और आह्निक कर लेने के अनन्तर विष्णुस्वामी जी को कृष्णाष्टार्ण, का उपदेश तथा कण्ठी देकर तिलक मुद्रा धारण कराकर भागवत शास्त्र का प्रदान किया और इस प्रकार उपदेश किया।

'अनन्यता से एक भगवान् (श्रीकृष्णचन्द्र) का सेवन करना, अन्य देवताओं को उन्हीं के अङ्ग समझना, जगत को भगवदात्मक मानना, वैष्णव

तथा वैष्णवाचार धारण करना, देह इन्द्रिय तथा अन्तःकरणों की शुद्धि का सम्पादन करना, हरिभक्ति को बढाना, संसार में आसक्ति नहीं रखनी, वैष्णव गुरु करना और उसके कथित अर्थ को ग्रहण करना, दुःसंग तथा पाप कर्म त्यागना, अपने वर्ण तथा आश्रम के उचित निष्काम कर्म करना। अब मन्त्र सम्प्रदाय कहता हूँ उसे सुनो 'पहले भगवान् पुरुषोत्तम ने, नारायण, शिवजी तथा शेषजी को अष्टादश वर्ण तथा पंचवर्ण मन्त्रों का उपदेश किया था। तदनन्तर शिवजी ने नारदजी को अष्टवर्ण, दशवर्ण तथा अष्टादश वर्ण मन्त्रों का उपदेश किया। नारद जी ने अष्टवर्ण, द्वादशवर्ण, दशवर्ण तथा अष्टादशवर्ण मन्त्र मुझे दिये। अब मैं शरणाष्टाक्षर, पंचवर्ण, नारायणाष्टाक्षर, श्रीगोपाल दशाक्षर, भगवद्द्वादशाक्षर, कृष्णाष्टाक्षर तथा विष्णुपंचाक्षर मन्त्रों को तुम्हें प्रदान करता हूँ तुम उन्हें ग्रहण करो'। यह कहकर व्यासजी ने पूर्वोक्त मन्त्र यथाक्रम से विष्णुस्वामी को दिये। तदनन्तर व्यासजी ने निजवेदान्त (ब्रह्मसूत्र) और शुकामृत (श्रीमद्भागवत) को रहस्य सहित पढ़ाकर शुकस्वामी के साथ ही साथ विष्णुस्वामी को भी धर्मरक्षार्थ नियुक्त किये। अनन्तर व्यासजी को नमस्कार कर शिष्यों सहित शुकस्वामी तथा विष्णुस्वामी वहाँ से चले। उस दिन से उत्तर दिशा में शुकाचार्य और दक्षिण दिशा में विष्णुस्वाम्याचार्य धर्मरक्षा के लिए प्रवृत्त हुए।

पश्चात् विष्णुस्वामी शुकदेवजी के साथ 'माथुरमण्डलयात्रा' कर अपने घर आये और गृहाश्रम में रहते हुए श्रौतस्मार्त यागों को यथाविधि करने लगे। इसके अनन्तर राजा ने आपका आचार्य–सिंहासन पर स्थापन किया अतः आपने वैष्णवधर्म के स्थापनार्थ दिग्विजय के लिये प्रस्थापन किया। प्रथम ही आपने दक्षिण दिशा को विजय किया। अनन्तर पश्चिम में द्वारका तक जय प्राप्त की। उत्तर में जय करते हुए श्रीबदरीनारायण के दर्शन किये। और पूर्व में बौद्धों को भगाकर तथा श्रीजगदीश के दर्शन कर दक्षिण दिशा में होते हुए अपने स्थान पर पहुँचे। इस तरह विष्णुस्वामी ने यात्राओं में वेदधर्म की प्रवृत्ति तथा कलियुग में वर्जित धर्मों की निवृत्ति करते हुए समस्त देवोपासनाकाण्ड का उद्धार किया।

अनन्तर आप गृहस्थाश्रम को अपने पुत्रों पर धरकर और वैष्णव संन्यास धारण कर श्रीहरिमूर्ति को साथ ले कांची में आ गये। वहाँ आपने **देवदर्शनादि** कितने ही शिष्य किये। उनमें से देवदर्शन को धर्मरक्षार्थ अपने सिंहासन पर

बैठाकर तथा उनको हरिमूर्ति एवं आम्नाय–ग्रन्थ देकर स्वयं त्रिदण्डी परमहं
हो वैकुण्ठ को प्राप्त हुए। तदनन्तर देवदर्शन की शिष्य परम्परा में सात
आचार्य हुए। उनके पीछे विद्याओं से पूर्ण, सर्वसद्गुणसम्पन्न, **राजविष्णुस्वा**
नामक आन्ध्र त्रिदण्डी का आपके सिंहासन पर अभिषेक किया गया। उन्हीं
द्वारका में जाकर द्वारकाधीश का स्थापन किया था और तीर्थराज (प्रयाग)
पहुँच कर प्रतिष्ठान पुर के अधिपति प्रतीप राजा के सहायता में रहने वाले बौद्ध
को जीते थे। जीते हुए बौद्धों ने वहाँ से भगकर पुष्प पुराधीश के सहायता
विष्णुस्वामी के शिविर को लूट लिया। और पुस्तकें भी जला दीं। पु
राजविष्णुस्वामी कितने ही शिष्यों सहित कांची गये और वहाँ अपने आसन प
द्रविडयतिराज श्रीविल्वमंगल का अभिषेक कर कौण्ड़िन्याश्रम गये और वह
से वे वैकुण्ठ पहुँचे। तदनन्तर मैं (बिल्वमंगलाचार्य) और दिवोदासाचार्य दोन
धर्मरक्षा करने लगे। वहाँ मैं दुर्लिङ्ग लिङ्गियों (लिङ्गायतों) के उपद्रव तथ
काल विपर्यास से दुःखित होकर अपने आसन पर देवमंगल को बिठा और उ
स्थान को छोडकर वृन्दावन चला आया। वृन्दावन में भक्ति के अतिशय
प्रत्यक्ष हुए भगवान् को प्रणाम कर कहने लगा। 'हे नाथ! घोरतम कलियुग
मेरी स्थिति का कुछ प्रयोजन नहीं है अतः मुझे आप अपनी लीला में ले चलिये
तब भगवान् ने यह आज्ञा की कि "मेरी लीला में रहने वाले दैवजनों के
उद्धारार्थ मेरे मुख अग्नि के अवतार **श्रीवल्लभ** का प्रादुर्भाव होगा तब तक
उनके उपदेशार्थ तुम यहाँ ही ठहरो"। अनन्तर मैं योगबल से ब्रह्मसर के
महातरु में सातसौ वर्ष तक ठहरा रहा। इस बीच में विष्णुस्वामी की परम्परा
उनके आसन पर **प्रभुविष्णुस्वामी** का अभिषेक हुआ। उनके बहुतेरे शिष्य हुए
उन शिष्यों को जब शास्त्रास्त्रपाणि यतिसैन्यों ने दुःख दिया तो उनने अपना
दुःख गुरु से निवेदन किया। गुरु महेश्वर के अंश थे इस लिये उनने महेश्वर
का ध्यान किया। महेश्वर प्रकट हुए और कहने लगे कि 'तू भी निज़ शिष्यों को
गोपाल गायत्री का उपदेश दे उनको ब्रह्मचारी कर सेना तैयार कर लें'
इत्यादि कहकर जब देव अन्तर्ध्यान हो गये तब मार्कण्डेय क्षेत्र में जाकर उन्हों
वैसा ही किया। वैसा करने से उनको विजय का उत्साह हो गया और
दिग्विजय को निकले। दिग्विजय में जहाँ तहाँ अपनी संप्रदाय के बिल्वमङ्गल
भर्गश्रीकान्त, गर्भश्रीकान्त, सत्वबोधिपण्डित आदि विद्वानों का स्थापन किया
और अपने आसन जनार्दन क्षेत्र में अपने शिष्य **श्रीधरविदि** को बैठाकर

हिमगोपाल में वैकुण्ठ पहुँचे। उन्हीं की परम्परा में गोविन्दाचार्य के शिष्य आपके पूर्वज **वल्लभभट्ट** हुए थे और प्रेमाकर के शिष्य आपके पिता **लक्ष्मणभट्ट** हुए। अब आप भगवदाज्ञानुसार मुझ से सम्प्रदाय ग्रहण करो और इस सम्प्रदाय के आचार्य होकर धर्म का प्रचार करो। इस वार्तालाप के अनन्तर **श्रीवल्लभाचार्यचरण** ने उनसे अष्टादशाक्षर मन्त्र तथा सम्प्रदायरहस्य ग्रहण किया और उनसे 'पुनः दर्शन देना' कहकर उनको विदा किया। तदन्तर ये मुनि (विल्वमङ्गलाचार्य) वृन्दावन गये और वहाँ अपनी वेणुधरगोकुलेश की मूर्ति अपने शिष्य हरि–ब्रह्मचारी को समर्पण कर तीर्थराज प्रयाग पहुँचे।

द्वितीय अवच्छेद

तदनन्तर **श्रीवल्लभाचार्य** कितने ही दिन तक विद्यानगर में रहकर एक दिन राजा से कहने लगे 'हम तीर्थयात्रा को जायेंगे'। उस समय राजा ने प्रार्थना की। नाथ ! आपके पधारने पर मेरा जीवन कैसे होगा?। तब श्रीमदाचार्य चरण ने राजा को राजधर्म तथा भागवत धर्मों का उपदेश किया और नित्यपूजन के लिए अपनी चरण पादुका प्रदान की। अनन्तर राजा ने सबका आह्वान किया और बड़े उत्सव के साथ आचार्यचरण को यात्रार्थ भेजे और आपकी रक्षा के लिये सौ सौ सात्वत वीरों की दो सेना नियुक्त की। छत्रचामरादि राजविभूति तथा देवविभूति भी आपके साथ भेजीं। आचार्यचरण उन सबको अपने पीछे लेकर दामोदरदासआदि अनुचरों सहित **पम्पासरोवर** के प्रति पधारे। शूकरक्षेत्र (सोरों) से मेघन कृष्णदासक्षत्रिय प्रयाग आये और विद्यापुर का जय सुनकर अनुमान किया कि 'भगवदवतार का प्रादुर्भाव हो गया है'। अतः वहाँ से शीघ्र चले और पम्पासरोवर के पास आकर श्रीमदाचार्य चरण के चरणारविन्द में साष्टाङ्ग प्रणाम किया। अनन्तर आचार्यचरण ने उनको उठाये और कुशल पूछकर आपने मन्त्र और कण्ठी प्रदान की। पश्चात् **पम्पासरोवर** पहुँचे। वहाँ आचार्यचरण ने तीन दिन में श्रीमद्भागवत का पारायण किया। वहीं वन में कृष्णदास ने तृषार्त पक्षी के ऊपर गुरू (श्रीवल्लभचार्यजी) के चरणपादुका का जल दिया और उस जल के लगते ही वह दिव्यकाय हो विमान में बैठकर सब मुनष्यों को देखते हुए वैकुण्ठ को गया। इस काम से दामोदरादिकों ने प्रसन्न होकर कृष्णदास को आचार्यपूजन के समय में छत्राधिकार दिया और शम्भुभट्ट को पूजा का अधिकार। शेष अधिकार पूर्ववत् ही रहे।

वहाँ से चलकर **ऋष्यमूकपर्वत** पर पहुँचे। वहाँ पर छत्रचामरा चमक रहे थे, शङ्खघण्टादि का नाद हो रहा था, जय शब्दों का उच्चारण रहा था कि इतने में वैष्णवसेना सहित विचरते हुए **श्रीरामदास** चले आ उनने अपने मनुष्यों से कहा 'यह आचार्यवेषधारी कौन है? यदि असाम्प्रदायि हो तो पकड़ लो'। फिर क्या था वैष्णव–सेना चढ़ी। इधर केतुकमण्डलु आ भी लडने को तैयार हुए। तब श्रीरामदास फिर कहने लगे। कलह क्यों कर हो पहले अपना वृतान्त तो कहो?। तब शम्भुभट्ट कहने लगे 'ये विष्णुस्वामिसम्प्रदा के प्रवर्तक, प्रेमाकराचार्य के शिष्य आचार्य लक्ष्मणदीक्षित के पुत्र, जीती हु विद्यानगर की विद्वत्सभा में वैष्णवधर्म को स्थापन करने वाले, श्रीमदाचार्य है यह सुनते ही उनने आकर आचार्यचरण के चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम किय तदन्तर आचार्यचरण ने उनको राममन्त्रमहिमा तथा भक्तिधर्म का श्रवण करा और फिर वहाँ से चले। **कुमार पद** में पहुँच कर आपने व्याससूत्र की क की। उन धर्मसूत्रों के व्याख्यान के विष्णु के अन्तर्यामित्व का साधन करने कुमारपादादिक भी आपके शिष्य हो गये। वहीं मध्यान्ह में कोई भोगिक कापालिक तिलकादिक की हँसीकर कहने लगा। हम योगियों में चन्द्रसूर्यादि की गति रोक देने का सामर्थ्य है तुम्हारी क्या सामर्थ्य है?। आचार्य चरण शिष्य शम्भुभट्ट ने उसका कायनिरोध कर दिया। तब तो वह अत्यन्तनम्र अ दीन हो गया और कार्यनिरोध से छूटने पर अत्यन्त लज्जित होकर अपने स्थ पर चला गया।

वहाँ से **व्यङ्कटाद्रि (लक्ष्मणबालाजी)** आये। वहाँ के आचार्य आपका आचार्य पूज़ा से सत्कार किया। वहाँ आपने श्रीमद्भागवतपाराय किया और श्रीलक्ष्मणबालाजी का नैवेद्य ले उनको प्रणाम कर वहाँ से पधारे अ **कामकोष्णीमूति** पहुँचे। वहाँ परमानन्दाचार्य आदि मिले वे कहने लगे य प्रेमधूलि विष्णुस्वामी तथा रामानुजाचार्य की जन्म भूमि है। वहाँ से आप कान पधारे। कान्ची में आपने **एकाम्बरेश्वर** को नमस्कार कर उनकी स्तुति की अ **वेगवती** में स्नान किया। अनन्तर **श्रीवरदराज** के मन्दिर पधारे। वहाँ सीढ़ि में अष्टपदी के गद्यपद्यों को अंकित देखकर आप नीचे ही विराजमान हो ग तब **श्रीवरदराज** ने अपने आचार्यों का सम्बोधन कर उनके द्वारा आपका नी की वेदिका पर ही सत्कार करवाया। फिर आपने **श्रीवरदराज** का पूजन क

उनका प्रसादान्न ग्रहण किया और पारायण किया। अनन्तर **श्रीवरदराज** को प्रणाम कर वहाँ की सब तीर्थयात्रा की। वहाँ चक्रवर्ती **नृसिंहाचार्य** तथा **नीलकण्ठाचार्य** के शिष्य विवादार्थ आये। जब आचार्यचरण ने ब्रह्मवाद स्थापन किया तो शिव और केशव के ईश्वरत्व में परस्पर वाद करते हुए चले गये। अनन्तर आचार्यचरण वहाँ से चले और **चिदम्बर** पहुँचे। वहाँ उमेश को नमस्कार कर '**श्रीशङ्कराचार्य** यहाँ उत्पन्न हुए हैं' ऐसी उनकी कथा कहकर दक्षिणद्वारका पधारे। यहाँ विष्णुस्वामिसम्प्रदायिकों ने आपका आचार्य पूजन किया और आपसे विद्यानगर के विजय की कथा सद्धर्म पूछा आचार्यचरण ने वह सब वर्णन किया और वहाँ से तृतीय दिवस चले। राघवाचार्यादिकों ने आपके विजय की प्रशंसा की और आपने उनको द्वैताद्वैतवाद में पराजित किया। अनन्तर उनको श्रीमद्भागवत के प्रामाण्य में जो सन्देह था वह भी आचार्यचरणों के प्रामाण्य मूर्धन्यता स्थापन करने से निवृत हुआ।

वहाँ से **दक्षिणमथुरा** पहुँचे। वहाँ स्नान करके बैठे थे कि कितने ही वैष्णव आये और वे कहने लगे। यहाँ कोई पाण्ड्य राजा **विजयनामक** हुआ था। उनके पुरोहित के पुत्र विष्णुस्वामी हुए। उनने वैदिक धर्म का प्रचार किया और पाखण्डियों को हटाये। फिर उनके सम्प्रदाय में बहुतेरे समर्थ आचार्य हुए। उनको शङ्करानन्द के समय में योगियों ने पीटे अतः वे शस्त्रधारी होकर प्रायः मूर्ख हो गये। अब सुनते हैं कि अभी विद्यानगर को जीतने वाला तथा उनके सम्प्रदाय का उद्धार करने वाला कोई उत्पन्न हुआ है। क्या आप उसे जानते है?। तब दामोदरदास ने कहा ये वे ही हैं और उनने आपका अर्चन किया। वहाँ से चलकर **रामेश्वर** पहुँचे। यहाँ शिष्यों ने लक्ष्मणतीर्थ में तीर्थश्राद्ध का आरम्भ किया। शैववीरों ने उनको देखकर यों हँसी की। देखिये न ये शैव हैं न वैष्णव, जाने ये पाखण्डी कौन हैं। तब तो उनका शम्भुभट्ट के साथ विवाद होने लगा। जब आपस में परूष भाषण होने लगा तो वे लड़ने को तैयार हुए। अतः केतु, कमण्ड़लु और लकुटा लोकि दोनों ने उनको भिन्दिपालों से मारकर भगा दिये। तदनन्तर आचार्यचरण ने **रामेश्वर** के दर्शन किये, प्रणाम किया, और वहाँ प्राप्त हुए गङ्गोदक से वेदमन्त्रोच्चारणपूर्वक समर्चन करवाया तथा पारायण से स्तवन भी किया। इसके अनन्तर **दर्भशयन** तथा **अनन्तशयन** आये। वहाँ वेदभ्रष्ट वीरवैष्णवों की आपने निन्दा की और वहाँ से चलकर **ताम्रपर्णी** पहुँचे।

वहाँ भी आपने स्नान तथा पूजन कर पारायण से स्तवन किया। वहाँ 'एव
पालङ्कोटेश्वर का रहने वाला पुरोहित **कालपुरूष** का दान लेने को गया थ
परन्तु जब उस पुरूष ने एक अँगुली उठाकर दिखाई तो वह डर गया अतः वह
के राजा ने उसको निकाल दिया, अनन्तर वह आचार्यचरण के पास आकर रोने
लगा तब तो आचार्यचरण ने उसके ऊपर दयाकर एक ब्राह्मण का निर्मा
किया और उसको गायत्री का उपदेश देकर अग्नि के समान तेज वाला क
दिया। पश्चात् वह ब्राह्मण उस पुरोहित के साथ गया और उसने कालपुरू
का दान ग्रहण किया। अतः राजा रोग से मुक्त हो गया।

रानी ने जब पुरोहित के मुख से यह सब वृतान्त सुना तो पति तथ
परिकर सहित आचार्यचरण के पास आई और आपको प्रणाम कर तथ
प्रार्थनाकर पुर में ले गई। वहाँ आपका राजविभूति से पूजन किया और आपसे
धर्म सुने तथा आपका उपदेश भी ग्रहण किया। वहाँ से आचार्यचरण श्रीवैकुण्
पधारे। वहाँ शेषाचार्य ने आपसे पूछा, आपकी कौनसी भक्ति है कौनसा सम्प्रदाय
है और कौन–कौन से ग्रन्थ प्रमाण है?। आचार्यचरण ने कहा, हमारे निर्गुण
भक्ति है। संकर्षण, शंकर, नारद, व्यास, विष्णुस्वामी देवदर्शनादिकों का सम्प्रदाय
है। वेद, व्याससूत्र, गीता, भागवतादिक प्रमाण–ग्रन्थ हैं। इसके पश्चात् आप
आलवाल चिन्नगरी में पहुँचे। वहाँ आपका जीर्णस्वामी ने सत्कार क
रामानुज मुनि की **चि०चा** दिखाई। उनको आचार्यचरण ने दामोरलीला क
अनुभव तथा निजसम्प्रदाय का पारम्पर्य सुनाया और उनके पूछने पर आपने
शारीरक का व्याख्यान भी किया। वहाँ से चलकर आप तोताद्रि पधारे
तोताद्रि में **जीर्णस्वामी** के पुरूषों ने आपको **आचार्यसत्कृति** के अनुसार
पधराये। वहाँ नारायण के दर्शन तथा चरणोदक का पान करने के अनन्तर आप
विराजमान थे उस समय वहाँ के जीर्णस्वामी ने कृष्णदेव राजा की सभा क
वृतान्त पूछा और धर्मसूत्रों की व्याख्या भी पूछी। उसका वर्णन कर वन में पधारे
और वहाँ एक जलाशय उत्पन्न कर उसके ऊपर पारायण–स्तवन किया। वहाँ
से **दीर्घनारायण** पधारे। वहाँ के जीर्णस्वामी ने भी वैसा ही सत्कार किया और
यह प्रश्न किया। तुलसीमाला निषिद्ध कार्य में निषिद्ध है उसे आप लोग सद
कैसे धारण करते है?। आचार्यचरण ने उसका उत्तर सविस्तार वर्णन किया
अनन्तर वहाँ से चलकर **कुमारी** पर पहुँचे। वहाँ उस कृष्णभगिनी को दान तथ
मान से सन्तोषकर **पद्मनाभ** पधारे। वहाँ देव का, प्रमाण तथा स्तवन क

वेदपारायण किया। वहाँ के राजा ने आपको बडे आदर के साथ अपने महल में पधराये और ब्रह्मराक्षस से धर्षित अपनी रानी का दुःख आपसे निवेदन किया। अनन्तर दामोदरदास ने अपने गुरू (श्रीवल्लभाचार्यजी) का चरणोदक दिया उससे ब्रह्मराक्षस मुक्त होकर वैकुण्ठ को पहुँचा और रानी नीरोग हुई। वहाँ से चलकर आचार्यचरण **जनार्दनक्षेत्र** पहुँचे। वहाँ भी भगवान् का दर्शन तथा पूजन कर पारायण किया। वहाँ विष्णुस्वामि–मतस्थ विरक्त **प्रेमाकर** के शिष्य तथा प्रशिष्य आये। उस समय गुरूपारम्पर्य की कथा हुई। वहाँ से चले और **मलयाद्रि** पर चढ़कर अगस्त्याश्रम के दर्शन किये। वहाँ से **हिमगोपाल** होते हुए **कौण्डिन्याश्रम** पहुँचे। वहाँ के सरोवर में स्नान किया और एक मुनि को देखा। मुनि आपसे अपना पूर्व वृतान्त कहने लगे। मेरे गुरू शाण्डिल्य हैं। उनको गोवर्धन में ललिता नामक मुनिकन्या ने भगवान् की प्रिय भक्ति रहस्य और पंचाक्षर मन्त्र प्रदान किया था और उनने मुझे यह कहा कि मैं आपको कह देता हूँ। आचार्यचरण ने उस को श्रवण किया और पुष्पफल उनके समर्पण कर चन्दनवन देखने को पधारे। वहाँ वृद्ध और सिद्ध तपस्वियों ने आचार्यचरण के दर्शन किये और आपका पूजन कर वैकुण्ठ को पहुँचे। वहाँ से आप **माहिषपुरी** पहुँचे। वहाँ का राजपुरोहित आपका शिष्य था उसने आपका सब वृतान्त राजा से कहा। राजा ने बडे आदर के साथ आपको पधराया और सिंहासन पर विराजमान कर आपसे भागवत धर्म तथा राज़धर्म श्रवण किये। अनन्तर बहुतेरा द्रव्य तथा एक रत्नहार आपके निवेदन किया और आचार्यचरण के वेत की डंडी का छत्र ताम्बे की डंडी के चमर और वैसे शंखचक्र ध्वजा आदि देखकर स़ोने की डंडी के छत्र तथा चामरादि भेंट किये। तब दामोदरदास कहने लगे। आचार्यचरण वनवासी तथा व्रत धारण करने वाले हैं। ये केवल अन्न वस्त्रमात्र वह भी शरणागत का ग्रहण करते हैं। यह द्रव्य तुम भगवान् के लिये अथवा ब्राह्मणों को देना। तब तो राजा शरणागत हुआ और भगवान् के अर्थ रत्नों का हार निवेदन किया। पुरोहित ने कहा कि मैं विद्यानगर में ही प्रसन्न हो चुका हूँ। वहाँ से आचार्यचरण पधार कर **महिलाकोटसंज्ञक यादवाद्रि** पहुँचे। जहाँ कि नृसिंहाचार्य का शिष्य **रामानन्द** था। जिसने प्रभुविष्णुस्वामी की तरह विरक्त वीरों की सेनाएं रक्खीं थीं। वहाँ योगिनीपुर से रामानुजमुनि के लाये हुए **चपलराय नामक गोपाल** के दर्शन किये और प्रणाम कर विराजे थे कि वहाँ के **जीर्णस्वामी** ने कहा। क्या आप तप्तमुद्रा नहीं धारण करते हैं? । आचार्यचरण

ने जवाब दिया कि जैसे आप माला धारण करते है (कण्ठी) तो उनने कह 'कण्ठी तो मल मूत्रादि के समय में निषिद्ध है'। आचार्य चरण ने कहा 'ये भी श्रौत तथा स्मार्त कर्मों में निषिद्ध है। इत्यादि सविस्तर वार्तालाप होने के अनन्तर वहाँ से पधारे और **सुब्रह्मण्य** पहुँचे।

यहाँ के ब्राह्मण आचार्यचरण को आये सुनकर दर्शन को आये औ प्रणामकर बैठ गये। आचार्यचरण ने भी वृद्धों से नमस्कार किया। उनमें बृहस्पति नामक ब्राह्मण कहने लगा। इस तरह के विलक्षण वेष वाले आप कौ हैं?। तब भट्टाचार्य ने जवाब दिया। आप भारद्वाजगोत्री **काकराग्रहार** के रह वाले लक्ष्मणाचार्य के पुत्र, विद्यानगर की विद्वत्सभा को जय करने वा **श्रीवल्लभाचार्य** हैं। यह सुनते ही वह फिर बोला। क्या यल्लमा के पुत्र! इन कहा, हाँ। तब तो वह कहने लगा। आप वैदिक और ब्रह्मचर्यव्रत के धारण कर वाले हैं। फिर आगमोक्त भागवत धर्म का आचरण क्यों करते हैं? त आचार्यचरण ने प्रत्युत्तर दिया, 'अपने वैदिक धर्म के अनन्तर भागवतधर्म आचरण में क्या दोष है ! क्यों कि केवल कर्ममार्ग का मण्डूकादि में निषेध और गीतादिक में भागवतधर्म की प्रशंसा है' यों कहने पर उनमें से ब्रह्मभट्ट विवाद किया। आचार्यचरण ने उसका प्रत्युत्तर दिया। शम्भुभट्ट और शेष भ आदि ने उसका विस्तार निरूपण किया। तब तो वे ब्राह्मण प्रसन्न होक आचार्यों से प्रणाम करने लगे और अविद्ध एकादशी का व्रत, विष्णुपूज ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणादि वैष्णवधर्म भी उनने ग्रहण किया। इतना ही नहीं किन्तु उन से कितने ही मनुष्य आपके शिष्य भी हो गये। फिर वहाँ से आप **उडुपीकृ** पधारे। वहाँ **माध्व** यतिराज ने आपका पूर्णसत्कार किया और पूछने लगे, आप सब बहुत अच्छा किया परन्तु दर्भशयन में भागवतों का क्यों धर्षण किया?। त आचार्यचरण ने उत्तर दिया कि वर्णाश्रमधर्म से द्वेष करने वाले भागवत नहीं हैं। उनको तो धर्षण करना ही चाहिये। यों कहकर वहाँ से चले और **गोक** पहुँचे। वहाँ शिवधर्मादि चारों प्रकार के शैव आये। उनने अपने वामादि मत अच्छा प्रतिपादन किया पर आचार्यचरण ने उन सबका खण्डन किया। वहाँ विद्यानगर का राजपुरोहित आन्ध्रभट्ट आपको लेने आया और कहने ल 'राजा ने प्रणामकर विज्ञापन करवाया है कि मेरे पुर में पधारने चाहि सुब्रह्मण्य का जय सुनकर राजा ने सपरिकर मुझे भेजा है हाथी, घोडा अ पीछे से आ रहे हैं।

तदनन्तर आचार्यचरण वहाँ से चले और ऋष्यश्रृङ्आश्रम (शृङ्गेरीमठ) पधारे। वहाँ चन्द्रमौलि (श्रीशिव) के दर्शनार्थ गये और दर्शन तथा प्रणाम किया। वहाँ के शाङ्कर नृसिंहाचार्य ने आपका अच्छा आदर किया। अनन्तर यतिराज आये। आचार्यचरण ने उनसे 'नमोनारायण' कहा, उनने प्रत्युत्तर में 'नारायण' कहा। पीछे यतिराज बैठकर कहने लगे, शुक्रस्वामी और विष्णुस्वामी दोनों का अद्वैत सम्प्रदाय है। वहाँ अब आप विष्णुस्वामी के सम्प्रदाय में आचार्य हुए हैं। तप, विद्या, और पद इनसे वृद्धता होती है वह सब आप में है। तथापि हम आश्रम तथा वय से वृद्ध हैं अतएव आपके मान्यभी हैं। इससे हम पूछते हैं 'कि सुब्रह्मण्य में जो आपने एकदेव–पूजावाद स्थापन किया वह कैसे घट सकता है क्योंकि शास्त्र में पञ्चदेवपूजा लिखी है। तब आचार्यचरण ने प्रत्युत्तर दिया। 'शास्त्र में तो ब्रह्माजी और स्वामि कार्तिक आदि की पूजा भी लिखी है। कहिये तो भला वह कैसे छोड दी! इससे यह निश्चित है कि भिन्न बुद्धि वालों को पञ्चदेव पूजा करनी चाहिये। औरों को एक ही देव की फिर तैत्तिरीय के ब्रह्मविचार का भी प्रश्न किया। आचार्यचरण ने उसका निरूपण किया। अतः वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनके शिष्यों ने शम्भुभट्टादिकों से विवाद किया उसमें वे पराजित हुए। वहाँ से चलकर आप **विद्यानगर** के पास आये और दूत भेजकर राजा को खबर करवाई। राजा उस ही समय परिकर सहित आया और प्रणाम कर कहने लगा। आज सोने का सूर्योदय हुआ है जो आपके दर्शन हुए। आपने जो मेरे जीवन के अर्थ सिंहासन सेवा और पादुकार्चन दिया था उसी का यह फल हुआ है। यह कहकर अपने महल में ले गया और आपका पूजनादि कर चरणोदक–पान किया। अनन्तर आपसे सब तीर्थों का वृत्तान्त सुनकर धर्म–श्रवण किया। आचार्यचरण उसको प्रसन्न कर फिर वहाँ से चले और **पाण्डुरंग–विट्ठलनाथ** पहुँचे। यहाँ आपने श्रीविट्ठलनाथ जी को प्रणाम कर लाये हुए भूषणादि समर्पण किये और पारायण स्तवन किया।

वहाँ आपके सम्प्रदायी भागवत लोग आये। उनमें से किसी ने हरिनाम का अनर्गल प्रभाव कहा। आचार्यचरण ने उसमें भी कुछ तारतम्य बताया। वहाँ से **नासिक** पधारे। वहाँ के ब्राह्मणों ने आपका आदर किया और वेद तथा शास्त्र दोनों में परीक्षा की और कहने लगे कि ब्राह्मणों को केवल शिव ही का आराधन करना चाहिये और भस्मादि धारण करने चाहिये। तब आचार्यचरण ने कहा नहीं, यह नियम नहीं है। क्योंकि शास्त्र में 'श्रेयस्काम को विष्णु का

आराधन तथा तुलसीमालाधारण' विहित है। फिर वहाँ से चले और **नर्मदा** के
दक्षिण में दारूवन तक और उत्तर में माहिष्मती पर्यन्त परिक्रमा की। वहाँ
मृगवन में मृग का बच्चा आपके शरण आया और उसके पीछे व्याध भी आपके
शरण आया। व्याध ने आपसे कहा, यद्यपि मैं मृगों के मारने में पाप जानता हूँ
तथापि अत्यन्त क्षुधा से पीडित होने के कारण मैंने इस मृग का साधन किया
है। तब तो उससे कृष्णभट्ट कहने लगे। अरे तू कौन है, और धर्मज्ञ किस तरह
से है, और यदि धर्मज्ञ है तो बता हिंसा किस तरह से धर्म है? वह कहने लगा
मैं राजपूत हूँ किन्तु वेश्यादि दुष्टकर्मों से भ्रष्ट हो गया और व्याधों के संग से
व्याघ हो गया। आपके चरणारविन्द के दर्शन से मेरी बुद्धि विमल हो गई। अतः
मैं आपकी शरण चाहता हूँ। पर क्या करूं कुटुम्ब का पेट भरना मुश्किल पड़
रहा है। तब आचार्यचरण ने कहा। 'चिन्ता छोड दे यह सोने का विटक ले जा
और इसे घर में धर कर द्वारकेश के दर्शन करने के अनन्तर राज्य पाकर
नारायण का भजन करना'। जब आपकी आज्ञा से वह घर गया तो वहाँ महल
पाया और आचार्यचरण के कथनानुसार भोगों से विरक्त होकर भगवद्भजन करने
लगा। फिर दारूवन में आचार्यचरण के आगे अर्जुन के वृक्ष आ पडे। लोग
कहने लगे 'ओहो यह क्या हुआ'। आचार्यचरण ने कहा 'आकाश की ओर
देखिये'। उनने आकाश में शिव और विष्णु के दूतों का झगड़ा होता हुआ
देखा। विष्णुदूत कह रहे थे कि ये राजपुत्र हैं पर एकादशी का दशमीविद्ध व्रत
करने से वृक्षत्व को प्राप्त हो गये हैं। अब वैष्णवाचार्य (श्रीवल्लभाचार्यजी) के
चरण रज के गन्ध से निर्मुक्त बन्धन हो गये। अतः हम इनको वैकुण्ठ ले
जायँगे। यह कहकर वे उन्हें वैकुण्ठ में ले गये।

इस वृतान्त को देखकर मनुष्य अत्यन्त विस्मित हुए और आपको प्रणाम
करने लगे। वहाँ से आप **भृगुकच्छ (भडोंच)** पहुँचे। वहाँ के ब्राह्मण आपके
पास आये और कहने लगे। गुरु की परम्परा से सम्प्रदाय होता है हम
सम्प्रदायी हैं क्या आप सम्प्रदायी नहीं हैं? तब तो आचार्यचरण ने सम्प्रदाय के
आग्रह तथा विष्णुभक्ति से प्रत्युत्तर दिया कि हम भी सम्प्रदायी हैं। इसके
अनन्तर **माहिष्मती** पहुँचे और वहाँ से **विशाला** गये। वहाँ विद्वान् ब्राह्मण
आपसे विवाद करने आये पर जब वे पराजित होकर चले गये तो दूसरे सौ धूर्त
ने आकार आपसे एकदम सौ प्रश्न किये। आचार्य चरण ने अपने सौ मुख से
सौ ही प्रश्नों का एक साथ उत्तर दिया। आचार्यचरण के उस अदभुत च

के वैभव की सब लोग प्रशंसा करने लगे। पर उनमें कितने ही दुष्ट भी थे वे कहने लगे। 'अरे इन्द्रजाली है जो कदाचित् यहाँ घटसरस्वती होता तो यह पराजित हो जाता'। तब कृष्णभट्ट कहने लगे अभी वह योगी कहाँ गया है? लोगों ने कहा वह अभी वेत्रवती गया है। फिर वहाँ से चले और **चैद्यस्थान** पहुँचे। वहाँ के राजा ने आपका अच्छा सत्कार किया और जय पराजय के प्रसंग में राजा कहने लगा, महाराज **घटसरस्वती** रामचन्द्र राजा के यहाँ सभा जीतने के लिए वैत्रवती गया है वह बड़ा उद्धत है आप उसे जीतिये और मेरे वीरों को मार्ग में रक्षा के लिए ले पधारिये। अनन्तर आप वहाँ से चले और **वेत्रवती** पहुँचकर स्नान तथा पारायण किया। जब रामचन्द्र राजा ने आपके आने की सुनी तो अपने किले से आपके पास आये और आपको एक नवीन बनाये हुए मन्दिर में पधराये तथा वहाँ सिंहासन पर विराजमान कर आपका पूजन किया और **घटसरस्वती** योगी की योगसिद्धियों का वर्णन किया। फिर कृष्णभट्ट के कहने से उसे बुलाया। बुलाते ही वह आया और कहने लगा। विद्या वैभव के बिना केवल ऊँचे सिंहासन पर बैठने से क्या हो सकता है और उसका शिष्य आपसे कहने लगा। क्या तुम जगत को सत्य मानते हो ? शम्भुभट्ट ने कहा 'हाँ, ऐसा ही मानते है'। फिर उसने अग्नि में एक वस्त्र पटका और जब वस्त्र जल गया तो कहने लगा। कहिये आपका सच्चा कपडा अब कहाँ गया? अनन्तर आचार्यचरण ने सबको दिव्य नेत्र दिये और सब सभा सदों से शम्भुभट्ट कहने लगे। देखिये अग्नि में यति के मुकट में और सब जगह ब्रह्मरूप से पट स्थित है या नहीं ? सब मनुष्यों ने कहा कि हाँ सब जगह वस्त्र सच्चा ही है। तब तो योगी कहने लगा। अरे इसने इन्द्रजाल कर दिया है अथवा अग्नि की शक्ति का रोध कर दिया है। इस लिये फिर से आग जलाई गई और उसने मन्त्र भी पढा पर आपके सामने उस बेचारे की क्या चल सकती थी। उस आग में एक तिनका भी नहीं जला। तब तो और बातों को छोडकर फिर विवाद ही करने लगा। जब विवाद में हार गया तो घट का पूजन कर सरस्वती से कहने लगा। क्यों सरस्वतीजी ! जगत् सत्य है या झूठा? तो सरस्वती कहने लगी, जगत सत्य है। तब तो उस घट को घर ले गया और उसके आगे मरने को तैयार हुआ। सरस्वती ने तो कह दिया कि भाई ! वाक्यति के आगे मैं झूठ कैसे बोल सकती हूँ। फिर क्या था राजा आपके शरणागत हुआ और आप वहाँ से जय जय ध्वनि के साथ पधारे।

दक्षिणयात्रा

इसके अनन्तर **दन्तवक्रादिकों के देशों में** सब राजाओं से पूजित होते हुए **धवलगिरि** पधारे। वहाँ का राजा आया और उसने आपके सौ अशर्फी निवेदन की। उस समय दामोदर दास ने कहा 'आचार्यचरण शिष्य के अलावा और किसी का धन नहीं ग्रहण करते हैं'। तब तो राजा क्रुद्ध हुआ और अपने विद्वानों को बुलवा कर उनके साथ आपका शास्त्रार्थ करवाया। शास्त्रार्थ में उनको पराजित कर वहाँ से पधारे और **श्रीमथुरा** पहुँचे। वहाँ **उजागर जी** चौबे की आज्ञानुसार आपने **विश्रान्तघाट** पर स्नान किया और पारायणस्तवन भी किया। वहाँ से आप गोकुल पधारे। गोकुल में आपने श्रावण शुक्ल एकादशी का व्रत तथा जागरण किया। वहाँ ही रात्रि में भगवान् ने आप को दर्शन दिये। उस ही समय आचार्यचरण ने आपको मिश्री तथा पवित्र सूत्र का अर्पण किया। अनन्तर **श्रीगोकुलनाथ जी** ने आज्ञा की कि "आप दैवजनों के उद्धारार्थ चिन्ता करते हैं उसे मत करिये मैं आपको भावना सहित **गद्य** देता हूँ उसे ग्रहण करिये और मेरी बताई रीति के अनुसार उसका दान करिये जिससे वे अहन्ता–ममता रहित होकर संसार छोड़कर मेरी लीला में प्राप्त होंगे"। इस आज्ञा के अनन्तर श्रीगोकुलनाथ जी अन्तर्हित हो गये। प्रातःकाल ही आचार्यचरण ने यह गद्य दामोदरदास तथा कृष्णदास दोनों को दिया और **गोविन्दघाट** पर पारायण किया। वहाँ से पधार कर आपने समग्र व्रजयात्रा की। जब व्रजयात्रा में वृन्दावन पहुँचे तो वृन्दावन में ब्रह्मसर पर जो बिल्वमङ्गलाश्रम था। वहाँ नरहरियति ने श्रीमदाचार्यचरण के दर्शन कर उनके सामने अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया और प्रायश्चित करके पुनः यथाविधि त्रिदण्डसंन्यास आपसे ग्रहण किया।

व्रज से चलकर आप **पुष्कर** पधारे। वहाँ ब्रह्मसर के पश्चिम तट पर विराजकर दोनों संहिताओं का पारायण किया और उस क्षेत्र की यात्रा भी की। वहाँ आपने भगवान् का कमलों से अर्चन किया और बडा आनन्द हुआ। वहाँ ही कमल के मणियों की माला वाले वेद पर ब्रह्मदत्तादिकों ने कहा कि 'ब्रह्मा का पूजन करना चाहिये और ब्रह्मा निर्गुण भी हैं'। तब आचार्यचरण ने कहा 'यद्यपि वे वैसे ही हैं तथापि इस समय सत्त्वप्रकृति विष्णु के अंशभूत राजस ही हैं और उनका ब्राह्मणरूप से ही पूजन किया जाता है'। तब तो वे आपके शरण आये। वहाँ से चल कर आप **अंबिकावन** पहुँचे। वहाँ पर कोई शिवयोगी आपसे

कहने लगा 'शक्तिसच्चिदानन्दरसा' है उसका यदि आगम मार्ग से अर्चन करें तो शीघ्र प्रसन्न होती है'। आचार्यचरण ने शम्भुभट्ट की तरफ संकेत किया अतः उनने कहा 'ब्राह्मणों को निगम मार्ग से ही अर्चा करनी चाहिये और मुक्ति देने का अधिकार हरि को ही है'। अनन्तर विवाद करने पर वह सशिष्य पराज़ित हुआ और आपके शरण आया।

मध्यमयात्रा

अनन्तर आप **सिद्धपुर** पहुँचे और वहाँ पर पारायणपाठ किया। वहीं औदीच्य ब्राह्मण 'शालिग्रामादि के अर्चन से ब्राह्मण का अर्चन श्रेष्ठ है' ऐसा कहने लगे। जब आपने मूर्तिपूजावाद स्थापित किया तो वे आपके शिष्य हो गये। वहाँ से चलकर **वटेश्वर** पधारे। वहाँ आचार्यपूजन के अनन्तर रात्रि में कथा भी हुई। कथा के अनन्तर आचार्यचरण ने अपने लोगों से आज्ञा की कि 'सवेरे हम लोगों को **अर्हत्पत्तन** जाना है इस लिये सब सावधान रहना'। आलोकि आदि ने कहा आपके चरणारविन्द के शरण में रहने वाले हम लोगों को कुछ भय नहीं है। फिर प्रभात में आलोकि ने सोने की छडी, कमण्डलु ने गोमुख, कृष्णदास ने छत्र, दामोदरदास ने पुस्तक, शंकरानन्द और श्यामानन्द ने चँवर, गोविन्द ने पादुका, त्रिवेणु ने पूजा का करंडिया, नृहरि और वेणु ने मोरछल लिये और शङ्खनाद करते हुए तथा गद्यपद्य पढते हुए अर्हत्पत्तन मे प्रविष्ट हुए। वहाँ की प्रजा ने आपको कौतुक सहित देखा और जैनों ने आपका ईर्ष्या सहित अवलोकन किया। अनन्तर उस पुर का अतिक्रमण कर सरोवर के पास जाकर उतरे। वहाँ चौथे प्रहर के समय जैन लोग आपका मत जानने के लिए आये। आपने उनको तृणासनों के ऊपर बिठाया। अनन्तर वे पूछने लगे आपके मत में दया धर्म है या नहीं? आपका कौनसा धर्म है? उसके अधिकारी कौन हैं? और आपके धर्म में प्रमाण क्या है? आचार्यचरण के संकेत से शम्भुभट्ट, हरिभट्टारक, धर्मशर्मोपाध्याय आदि ने जिनाचार्य श्रीघनाचार्य सुन्दरमणि प्रतापसूरि, **सौभाग्यसूरि**, जिनसूरि आदि वादियों को विवाद में जीत लिये। तब तो उनमें से कितने ही क्रुद्ध होकर आपकी निन्दा करने लगे और कितने ही शान्त पुरुष आपकी स्तुति करने लगे और वहाँ से चले गये। उनमें से भी कितने ही वैश्यों ने आपसे शरणागति की प्रार्थना की। आचार्यचरण ने उनकी प्रार्थना स्वीकार

की और उन तृणासनों को अपने भृत्यों से फिकवाकर शिष्यों सहित आपने स्नान और प्रायश्चित किया और उसके पश्चात् आह्निक किया। फिर प्रभात में आये हुए वैश्यों को शरणागत कर वहाँ से चले और **वृद्धनगर** पहुँचे। वहाँ नागर ब्राह्मण आये। उनमें से शंकर, भीमशंकर आदि ने कण्ठी और तिलक का निषेध कर भस्म तथा रुद्राक्ष की प्रशंसा की। आचार्यचरण ने उनको पराजित किये। तब तो वे आपका उपदेश लेने को तैयार हुए और जब 'पहले मैं उपदेश लूंगा' दूसरा कहने लगा 'नहीं पहले मैं उपदेश लूंगा' आपसे में कलह करने लगे तो इस प्रकार आचार्यचरण ने जितने नागर थे उतने ही रूप धारण कर उनको एक साथ दीक्षित किये।

वहाँ से चलकर **विश्वनगर (बिसनगर)** पहुँचे। वहाँ की सब प्रजा आपके शरण आई। उनको आपने धर्मोपदेश किया और वहाँ से चलकर **डङ्कर्षिपद (डाकोरजी)** पधारे। वहाँ **श्रीद्वारकेशजी** के दर्शन किये और उनकी कथा वर्णन करने के अनन्तर श्रीमद्भागवत तथा गीता का पारायण–पाठ किया। वहाँ से आप गुर्जर देश (गुजरात) को पवित्र करते हुए तथा नर्मदाजी के तीर्थों में होते हुए **व्यासाश्रम** पहुँचे। वहाँ व्यासजी को प्रणाम किया और उनकी आज्ञा लेकर भृगुकच्छ **(भड़ोंच)** पहुँचे। वहाँ भार्गवों के 'हरिहराद्यभेद' पूछने पर उनको वह वर्णन कर **आश्विनेयतीर्थ** पहुँचे और वहाँ पारायण पाठ भी किया। वहाँ पर कितने ही गुजराती लोग आपकी कथा की पूर्ति देखने को आये। आचार्यचरण के दर्शन से विमल हो जाने के कारण, उनको कथा सुनने के लिए आये हुए देवता, ऋषि, वैष्णव और नाँचती हुई अप्सराएँ दिखाई पडे। आपके इस प्रभाव को देखकर वे सब आपके शरणागत हुए। तदनन्तर सिन्धुसंगम पर तापी पहुँचे। वहाँ दुर्वासा के स्थान में 'जिसका एक ऊँचा हाथ और पैर सूख रहा था' ऐसा एक योगी दिखाई दिया। कृष्णदास उससे पूछने लगे। तू ऐसे निर्जन वन में कैसे तप कर रहा है? तब तो वह कहने लगा, मैं भगवान् के दर्शन के लिये तप कर रहा हूँ, दो युग हो गये। वह सुनने में तो दयासिन्धु आता है पर मुझे तो निर्दय दिखाई पड़ता है'। कृष्णदास ने आकर आचार्यचरण से प्रार्थना की और आपने उस योगी को पञ्चेश्वर रूप से दर्शन दिये। दर्शन पाते ही योगी की काया दिव्य हो गई और सिद्धार्थ होकर पृथ्वी में विचरने लगा।

फिर **भानुक्षेत्र** पहुँचे। वहाँ आपने आह्निक **तथा** पारायण पाठ किया और विष्णुस्वामिमतस्थ **जाम्बवत्** विप्रों को शिष्य किये तथा उनको अपने सिद्धान्तों का बोध कराया। वहाँ से **कपिलक्षेत्र** आये। वहाँ आपकी **वेदपारायण** तथा भारत की पूर्ति सुनकर कापिल ब्राह्मण आये और निरीश्वर सांख्य का प्रतिपादन करने लगे। आचार्यचरण ने युक्ति से ही उसका खण्डन कर दिया। अनन्तर आपका वैश्वानररूप देखकर वे डरे और आपके शरण आ गये। वहाँ से **बहुचरा** गये। वहाँ वाममार्गी लोग आये और सुरामांसभक्षणादि की प्रशंसा करने लगे। शम्भुभट्ट ने उन सब को जीत लिये। तब तो वे लोग इनको मारने के लिये तैयार हुए पर लकुटालोकि ने उनको मार भगाये। अनन्तर उनने श्मशान में जाकर आपके ऊपर अभिचार किया। उससे रात्रि में दावानल दिखाई दिया और पत्थर वर्षने लगे तथा भूत उठ उठ कर सामने आने लगे। आचार्यचरण की आज्ञा से जब इनने शंखनाद किया तो वह सब उत्पात तिरोहित हो गया। वहाँ से आप सिद्धाचल पधारे। **सिद्धाचल** में राजदेव की विभूति से मेला भरा हुआ देखकर आचार्यचरण बाहर के ही जलाशय पर उतरे। आचार्यचरण को पण्डित सुनकर आपसे मिलने के लिये जिन पण्डित आये और शिविर के बाहर ठहरे। आचार्यचरण के कथनानुसार शम्भुभट्ट ने उनसे पूछा कि तुम कैसे आये हो ? उनने जवाब दिया कि आपका पाण्डित्य देखने आये हैं। यदि आप पण्डित हैं तो हमारे मत का वर्णन करिये। आचार्यचरण ने उनके सब मत का वर्णन कर साथ ही खण्डन भी कर दिया। अतः वे आपके पाण्डित्य की बहुत प्रशंसा करने लगे।

वहाँ से आप **प्रभास** पधारे। वहाँ पर कोई शम्भुभट्ट का भक्त था। शम्भुभट्ट के कहने से उसने आचार्यचरण से दीक्षा ग्रहण की। फिर आप **सोमनाथ जी** के मन्दिर पधारे और सोमनाथ के दर्शन प्रणाम स्तुति के अनन्तर वहाँ की सब यात्रा करके आपने वेद पारायण पाठ भी किया। वहाँ किसी शम्भु नामक विद्वान् ने कहा कि ब्राह्मणों को ही शिव का आराधन करना चाहिए। आचार्यचरण ने उसे विवाद में जीता अतः शेष ब्राह्मण मुँह बिगाड़कर चले गये। वहाँ से आप **रैवताद्रि (गिरनार)** पधारे। वहाँ आपको दामोदर कुण्ड पर दामोदर–मूर्ति मिली और वहीं भारत के मोक्षधर्म की कथा में अश्वत्थामा आया। कृष्णदास ने उसे देखा और उससे बातचीत भी की। फिर पूर्वोक्त पर्वत के ऊपर पधारे। वहाँ गोरख्य शिखर के नीचे गोरखनाथजी

के शिष्य मिले और कहने लगे। यदि आप सिद्ध हैं तो बताइये अभी गोरखनाथजी कहाँ हैं? तब कृष्णदास ने कहा गोरखनाथ जी सब जगह हैं। यह कहकर उनको करोडों गोरखनाथ दिखाकर वहाँ से पधारे और **मूलगोमती** पहुँचे। वहाँ कृष्णदास ने आचार्यचरण की कथा में पातञ्जल योगशास्त्र के जानने वाले किसी त्रिदण्डी दक्षिणात्य विप्र को देखा। कथा के अन्त में जब उससे पूछा गया तो कहने लगा, मैं विष्णुस्वामिमतवर्ती बिल्बमंगलाचार्य का शिष्य हूँ और हरिलीला तथा आचार्यचरण के दर्शन लिये चार समय मृत्यु का निवारण कर यहाँ ठहर रहा हूँ। आचार्यचरण ने उसको भागवत् श्रवण कराया और भगवत्लीलाएं दिखाई।

अनन्तर वहाँ से आप द्वारका गये। वहाँ गोमती के तट पर शमीवृक्ष के नीचे आपने आमिका (बैठक) की और स्नानादि कर लेने के अनन्तर गोविन्द ब्रह्मचारी आदि आपको आदर से भगवन्मन्दिर में ले गये। वहाँ द्वारकाधीश को प्रणाम किया। पश्चात् स्तुति करके और लाये हुए हारादिक समर्पण कर समर्चन किया। अनन्तर श्री द्वारकाधीश आचार्यचरण से आज्ञा करने लगे, 'आप जिन लोगों को आत्मसमर्पण कराके स्वीकार करेंगे उनको श्रीनाथजी की तरह मैं भी स्वीकार करूंगा' और प्रसन्न होकर माला तथा बीडा दिये। फिर आप अपने बैठक में पधारे और पारायण पाठ करने लगे। वहाँ ही शारदामठ से दण्डितोम आये और श्रीभागवत् के प्रामाण्य में विवाद करने लगे। उस विवाद में वे पराजित हुए और आपकी प्रशंसा करते हुए अपने मठ को चले गये। आपने वहाँ की सब यात्रा की। एक दिन आप की कथा हो रही थी कि कोई सांचीहर (साँचोरा) ब्राह्मण का लड़का 'राम' आ बैठा। आचार्यचरण ने उससे पूछा 'तू कौन है ?' तब तो वह कहने लगा, मैं देहादि से अतिरिक्त सच्चिदानन्दरूप ईश्वर से पालित तथा लालित हूँ। आपने फिर पूछा 'तुझे यह ज्ञान कैसे है?' उसने कहा 'भगवदिच्छा से'। आचार्यचरण ने कहा 'यह तो ठीक है पर लोक–व्यवहार के अनुसार कह'। तब तो उसने अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया और आपके शरण आ गया। आचार्यचरण ने उसके साथ शङ्खोद्धारादि की यात्रा की।

इसके अनन्तर **नारायणसर** पहुँचे। वहाँ किसी सिन्धुदेश के राजा का कामदार अपने रोगी पुत्र नारायण को आचार्यचरण के पास लाया। बहुत प्रार्थना

करने पर आचार्यचरण ने उसे निरोग किया कामदार ने आचार्यचरण से अपने घर को सनाथ करने की याचना की। याचना को मानकर आचार्यचरण आदर सहित उसके पुर में पहुँच कर म्लेच्छों को विस्मित करते हुए विरक्त सैन्य सहित उसके घर पधारे। वहाँ उसको, उसके कुटुम्ब वालों को तथा अन्य मनुष्यों को भी शरणागत शिष्य किये और उसके निवेदन किये हुए द्रव्य, राजा की तरफ की फौज तथा स्वयं उसको भी साथ लेकर **सिन्धु नदी** के तट–तट पर होते हुए **यवनमहत्पद** के समीप पहुँचे।

जब यवनों ने आपके शंख का शब्द सुना तो बडे क्रोध के साथ शस्त्र लेकर मार्ग रोकने के लिये आये। उनको आचार्यचरण के पुरूष सिंहादि भयानक रूप वाले दिखाई दिये अतः वे डरकर लौट गये और उनने यह सब वृतान्त अपने गुरू से जाकर कहा। गुरू सुनते ही कहने लगा। यदि **वल्लभाचार्यजी** वेदविद्या के विद्वान् तथा दिग्विजयी हैं तो धर्मनिर्णय के लिये मगधदेशीय बौद्ध के साथ मैं स्वयं ही उनके पास जाऊंगा। यह कहकर वह यवन, बौद्ध सहित आचार्यचरण के शिविर के समीप आया और बाहर बैठे हुए (सिन्धु देश के) अमात्य से कहने लगा कि 'आप आचार्यचरण से कहिये कि यवनों का गुरू धर्मनिर्णय के लिये आपके पास आया है'। अमात्य उनको वहीं बिठा कर आचार्यचरण की अनुज्ञा लाया और उनको ले गया। जब उनने हिंसा और अहिंसा का धर्मनिर्णय पूछा तो आचार्यचरण एक ब्राह्मण को मध्यस्थ कर कहने लगे। 'धर्मशास्त्र की उक्ति के अनुसार हिंसा और अहिंसा दोनों धर्म हैं और उससे विरूद्ध होने पर दोनों अधर्म हैं इस निर्णय के लिये इस वृक्ष पर काक और कबूतर बैठे हैं उनसे पूछिये'। फिर मध्यस्थ ब्राह्मण यवन, बौद्ध तथा उनके शिष्यों सहित गया और पहले काक से कहने लगा। आचार्यचरण की आज्ञा से हमारी मनोगत वार्ता को कह? तब तो काक कहने लगा। भाई ! मैं पूर्वजन्म में फारिस देश का रहनेवाला शूरवीर यवन था और सदा शिकार खेला करता था। एक समय मैं शिकार में घायल हो गया तो मैंने अपने गुरू से पूछा कि इसका क्या कारण है? गुरू ने कहा तैंने विना विधि के पशु मारे इसका यह फल है। फिर उस गुरू की बताई विधि से मैं बराबर शिकार करता रहा। जब मैं मरा तो नरक में गया और वहाँ से आकर कितनी ही सर्पादि योनियें भोगी और अब काकयोनि भुगत रहा हूँ। इससे मेरे मत के अनुसार तो विधि से करो चाहे अविधि से हिंसा दुःखदायी ही है।

फिर उसी तरह कपोत से पूछा गया तो कपोत भी इस प्रकार कहने लगा, मैं गुर्जरदेश (गुजरात) में क्षत्रिय हुआ था और मैंने बहुतेरे यज्ञ भी किये। जब यज्ञों में मैंने निर्दय पशुघात देखा तो मुझे ग्लानि आई और मैंने जैनधर्म स्वीकार कर लिया। आरम्भ में मैं उस धर्म में दयाभाव जानता रहा अतः मैंने यज्ञयागादि सब छोड दिये। स्नान दानादिकी तो बात भी नहीं रही। एक दिन मेरे काँटा लग गया अतः मैं रात्रि के समय एकं गायों के खिड़क के पास खडा था। उस समय उस खिड़क में आग लगी और पशु तथा मनुष्य पुकारने लगे और कहने लगे, 'अरे तू बाहर की साँकल खोल दे'। पर मैं तो जैनधर्म में था अतः रात्रि में चलने के पाप से डरा और मैंने साँकल नहीं खोली। सवेरा होते ही राजा ने मुझे पकड़ लिया और मेरे पैरों में बेडियें ड़ालकर मुझे कैद कर दिया। मरने पर मैं कपोत हुआ। अतः शास्त्र में अनुक्त अहिंसा भी अधर्म के ही लिये है। फिर वे यवन तथा बौद्ध अपने वेद विरूद्ध धर्म को छोड़कर आचार्यचरण के शरण आये। आचार्यचरण तथा उस (मध्यस्थ) ब्राह्मण ने उनसे कहा कि 'तुम भगवद्भजन करना, अनन्तर वे गुरू (आचार्यचरण) को प्रणाम कर वहाँ से बिदा हुए। यवन वहाँ से द्वारका गया और हिंसा को छोड़कर ब्राह्मण तथा अतिथियों की शुश्रुषा करने लगा। वहीं भगवद्भक्त यवन आर्यखान इस नाम से प्रसिद्ध हुआ। बौद्ध भी अपने साथी पार्श्वनाथ जाने वाले यात्रियों का साथ छोड़कर नारायण सर पहुँचा और महत्पुरूषों की सेवा से विशुद्ध होकर भगवद्भक्त हुआ। वहाँ से आचार्यचरण चले और **रहूगणपुर** देखते हुए नृसिंह जी के उत्पत्ति स्थान **प्रल्हादाद्रि** पहुँचे। वहाँ से **पाँचों नदियों** में स्नान कर तथा पंजाबियों को वैष्णव करते हुए **रेवासर** आये। वहाँ आपकी जय-जय ध्वनि हुई और आपने वहाँ ब्राह्मण भोजन भी करवाये।

पश्चिम यात्रा

वहाँ से **यमुनोत्री** स्नान कर कुरूक्षेत्र पधारे। वहाँ की यात्रा की तथा शाकटिक महाबल ब्राह्मण, वासुदेव पण्डित, जगदानन्द, भागवतपण्डित तथा रामानन्द इन सबको शिष्य करते हुए **हरिद्वार** पहुँचे। वहाँ से तपोवन **ऋषिकेश** गये और वहाँ से गंगा को पारकर **त्रिहरि (टिहरि)** पहुँचे। वहाँ के राजा ने आपका अच्छा सत्कार किया। वहाँ से आप गंगोत्री पधारे और गंगोत्री में भागीरथशिला के दर्शन किये। फिर वहाँ से लौटकर **लक्ष्मणझूला** होते हुए

व्यासगंगादि के मार्ग से **रूद्र प्रयाग** पधारे। वहाँ आपसे बिल्वमंगल का पुनः समागन हुआ। उनके कथन से आपने गुप्त काशी का पुस्तक संचय देखा और वहाँ से चलकर **केदारनाथ** पधारे। केदारनाथ के सब देवों के दर्शन कर **ऊखामठ** और **जोशीमठ** के यायावर विद्वानों को पराजित करते हुए नारायण स्थान **(बदरिकाश्रम)** पधारे। वहाँ **श्रीबदरीनाथ** तथा **व्यास जी** की स्तुति की और नारदजी तथा उद्धवजी से मिलकर **व्यासाश्रम** पधारे। वहाँ आपने व्यासजी को "वामबाहु"– यह पद्य सुनाया और व्यासजी ने आपको आशीर्वाद दिया। वहाँ से लौटे और **शोणशृङ्ग–नन्दप्रयाग–कर्णप्रयाग** के मार्ग से **चाकचिक्य** घाट पर उतरकर शम्भलग्राम (शम्बल) पहुँचे। वहाँ कल्किस्थान के दर्शन कर कन्नौज आये। **कन्नौज** में आप गंगातट पर विराजे और दामोदरदास के दिये ताम्रपत्र में स्थित लीला सम्बन्धी अर्थ को निरूपण कर सकुटुम्ब दामोदरदास को शिष्य किया तथा उन्हीं के लिए वहाँ द्वारकेश की प्रतिष्ठा कर चले और **ब्रह्मावर्त** होते हुए **नैमिषारण्य** पहुँचे। वहाँ आपने **'नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितम्'** इस श्लोक का व्याख्यान ऋषियों को तीन प्रहर तक श्रवण कराया। वहाँ से चलकर **अयोध्या** पहुँचे। अयोध्या में आपने रामायण का पारायण किया। वहाँ से प्रयाग पधारे और प्रयाग में वेदपारायण किया। वहीं आपके पितृव्य (काका) तथा भातृव्य (भतीजा) आपसे विवाद करने आये उनको आपने समझाया और अपने भतीजा गद को शिष्य किया। वहाँ से चलकर आप विन्ध्याचल पधारे।

उत्तरयात्रा

विध्याचल से आप काशी पधारे। वहाँ यात्रा करते हुए पाँचवे दिन **शिवगया** पहुँचे। शिवगया में कथा के अनन्तर एक राजा कहने लगा। 'मैंने आठ बार इस शिवगया की यात्रा की। तथापि मेरा भाई जो प्रेत हुआ है वह मेरी स्त्री को नहीं छोडता'। तब तो कृष्णदास ने कहा 'प्रेत कब आवेगा'? **राजा** ने कहा 'दो घडी बाद'। कृष्णदास ने कहा 'अच्छा उस महिला को यहाँ लाइये'। राजा अपनी स्त्री को वहाँ लाया और निर्दिष्ट समय पर प्रेत भी आया। महिला 'पाहि पाहि' कहने लगी। कृष्णदास ने कहा 'अरे प्रेत! तू क्या चाहता है इसे छोड दे'। प्रेत कहने लगा 'मैंने शम्भली (कुट्टिनी) से संगम किया था उसमें मेरे एक लडका हुआ। उसको मैंने राज्य दिलाना चाहा पर बल के मारे

इसने राज्य नहीं दिया। फिर मैं मरा और प्रेत हुआ प्रेत होने पर मैंने पूर्वद्रोह से इसके लड़के मार दिये अब इसकी पत्नी को भी मार दूंगा'। तदन्तर कृष्णदास ने प्रेत के ऊपर आचार्यचरण का चरणोदक गिराया और गिराने के साथ ही प्रेत उस देह को छोड़कर दिव्यकाय हो गया और भाई को अभय देकर तथा आचार्यचरण को नमन कर स्वर्ग को प्राप्त हुआ।

एक दिन आचार्यचरण काशीयात्रा समाप्त करके **मणिकर्णिका** पर विराज रहे थे कि इतने में **श्रेष्ठिकृष्णदास** के पुत्र पुरूषोत्तम दास आये और हाथ जोड़कर कहने लगे। महाराज! आपके दर्शन के लिये मैं बहुत दिन से तप कर रहा हूँ अतः आप मेरे ऊपर अनुग्रह करके मेरे घर पधारिये। तदन्तर आचार्यचरण ने उन्हें स्नान कराकर मन्त्र तथा कण्ठी प्रदान की और उनके घर में पधारकर सेवा के लिये मदनमोहनजी की मूर्ति को पुष्टकर के प्रदान की। मार्ग की मर्यादा सिखाई और उनके सब सम्बन्धियों को भी उपदेश किया। अनन्तर **गोमतीसंगम** पधारे। वहाँ पर कोई श्याम तथा गौर वर्णवाले दो स्त्री पुरूष परस्पर प्रेम से बद्ध होकर गान कर रहे थे कि इतने में उनके कुटुम्बी पुरूष तथा राजपुरूषों ने उनको घेर लिया। वे दोनों दौड़कर आपके स्थान पर आपके शरण आये और कहने लगे, 'हम शरण के लिये आये हैं। आचार्यचरण ने कृपाकर उनका रूप बदल दिया। पीछे से पकड़ने वाले भी आये। कृष्णदास ने उनको दिखाये और उनको विपरित रूप वाले देखकर वे लौट गये। फिर आचार्यचरण ने उन्हें शिष्य कर वृन्दावन भेज दिये।

अनन्तर वहाँ से चले और **शोणनद** पहुँचे। वहाँ **हरिहरक्षेत्र** पर सारस्वत भगवानदास पर अनुग्रह किया। हरिहर क्षेत्र से **गया** पधारे। गया में **विष्णुपद का** पूजन किया और वहाँ से **वैद्यनाथ** होते हुए **गंगासागरसंगम** पधारे। वहाँ से चलकर **वैतरणी** पधारे। वैतरणी में पुरोहित लोग आये और कहने लगे 'यहाँ कृष्णा गाय का दान करना चाहिये। शम्भुभट्ट ने कहा अच्छा कृष्णा गाय लाइये। वे गये और एक कृष्णा गाय लेकर आये। शम्भुभट्ट ने पुनः कहा 'भला एक गाय तुम सबको कैसे दी जा सकती है? तब तो वे उदास हुए। अतः आचार्यचरण ने वहाँ की सब गायें कृष्णा कर दी और उनको दान कीं। इस कर्म से ब्राह्मण अत्यन्त विस्मित हुए और गायें ग्रहण कर आपके शरण में आये और ग्रहण की हुई गायें अन्यजनों को दान कर दीं। वहाँ से चले और विजया तथा **भुवनेश** के दर्शन करते हुए **श्रीजगन्नाथ** पहुँचे।

वहाँ जगदीश को प्रणाम कर विराजे ही थे कि उस समय वहाँ के पंडा ने आपके हाथ में महाप्रसाद दिया। अब तो आचार्यचरण विचार करने लगे कि 'वैष्णव को एकादशी–व्रत भी सर्वथा करना चाहिये और जगदीश का महाप्रसाद भी ग्रहण करना चाहिये और मेरे समान आचार्य को तो दोनों ही बातें करनी चाहिये'। इसलिये आप महाप्रसाद की स्तुति करने लगे और स्तुति करते करते द्वितीय दिन हो गया। प्रातःकाल होते ही पहले आपने महाप्रसाद लिया और पीछे आह्निक किया। अनन्तर विद्वानों के विवाद के निर्णय के लिये वहाँ का राजा आपको सभा में ले गया। वहाँ चार प्रश्न हुए–

1. शास्त्र कौन है?

2. देव कौन है?

3. मन्त्र क्या है?

4. और कर्तव्य कर्म क्या है?

इस विषय में विद्वान् लोग परस्पर झगड रहे थे। आचार्यचरण ने उन सबको पराजित कर दिया। पंडितों ने कहा 'यह तो कुछ भी निर्णय नहीं हुआ जय और पराजय ये तो विद्या के अधीन हैं अधिक–पठित न्यून–पठितों को दबा ही दिया करते हैं इससे क्या हुआ'। तब तो राजा ने श्रीजगदीश के आगे पत्रिका रक्खी। उसमें भगवान् ने श्लोक लिखा। जिसका अभिप्राय इस प्रकार था–

1. एक भगवद्गीता ही शास्त्र है

2. एक देवकी पुत्र (श्रीकृष्णचन्द्र) ही देव है

3. श्रीकृष्ण के नाम ही एक मन्त्र है

4. कर्तव्य कर्म भी एक ही है कि श्रीकृष्णचन्द्र की सेवा'।

इस निर्णय को सबने स्वीकार किया और कहने लगे आचार्यचरण का किया हुआ निर्णय बहुत सत्य है। पर उनमें एक धावक ब्राह्मण भी पंडित था। वह कहने लगा। 'इसमें धूर्तता हुई है क्योंकि जगदीश के तो हाथ है नहीं फिर भला उनने पत्रिका कैसे लिखी होगी। इसलिये उसकी संमति से जगदीश के मन्दिर में पुनः पत्रिका रक्खी गई। उसमें भगवान् ने जो श्लोक लिखा उसका आशय इस प्रकार था।

'जो मनुष्य पिता से द्वेष करता है उसे दूसरे के वीर्य से उत्पन्न हुआ जानना चाहिये और जो ईश्वर से द्वेष करता है उसे अन्त्यज का वीर्य जानना चाहिये'

तब तो लोग उसको धिक्कारी देने लगे। अनन्तर राजा ने उसकी मा को बुलवाई और धमका कर पूछा तो वह कहने लगी यह रजक का वीर्य हैं फिर राजा तथा विद्वानों ने आपका बडे समारोह के साथ पूजन किया। अनन्तर आचार्यचरण ने वहाँ पर नरहरि ब्राह्मण पर अनुग्रह किया और मार्ग में रामदास पर अनुग्रह करते हुए मन्दारमधुसूदन पधारे। वहाँ पर आपने भगवान् का पूजन किया और पारायण पाठ किया। **मन्दारमधुसूदन** में सिंह के डर के मारे एक हरिणी अपने बच्चे को छोड़कर भाग गई थी। अतः आचार्यचरण ने मृगरूप धारण कर उसे अङ्गुष्ठ पान कराया और उसको जीवन दान दिया तथा अष्टाक्षर मन्त्र का दान कर पूर्व जन्म की स्मृति भी दी। सिंहादिकों के भय की निवृत्ति के लिये आपने उसे सिंह का स्वरूप दान किया। पारायण समाप्ति के अनन्तर वहाँ से चले और अनेक देशों को पवित्र करते हुए तथा अनेक आचार्यो से समागम करते हुए **महेन्द्र** पधारे।

वहाँ आचार्यचरण ने परशुरामजी के दर्शन किये और प्रणाम भी किया। अनन्तर परशुराम जी आपसे कहने लगे। जिस तरह विष्णु के अवतार मैंने दुष्ट क्षत्रियों को मारकर वैदिक धर्म स्थापन किया। इसी तरह भगवदवतार से आपने सद्धर्म का स्थापन किया है। अतः अन्य सब तीर्थों की तरह यहाँ भी मेरे प्रसन्न होने के लिये भागवत् पारायण करिये। आचार्यचरण ने उस आज्ञा को स्वीकार कर वहाँ भी पारायण किया। वहाँ एक दिन रात्रि में गाना सुनाई दिया। आचार्यचरण के शिष्यों ने पूछा कि यह गान कहाँ हो रहा है? तो कोई वहाँ का रहने वाला ब्राह्मण कहने लगा, यह गान तो हम लोग नित्य सुनते हैं पर यह कहाँ होता है इसकी हमें कुछ खबर नहीं। तब आचार्यचरण ने कहा कि यहाँ कोई भगवद्भक्त रहता है वह नित्य भगवान् का उत्सव करता है। फिर कृष्णदास के साथ उन ब्राह्मणों के गान के स्थान पर गये।

रास्ते में पहले सिंह मिला वह इनकी प्रदक्षिणा करके चला गया। फिर अग्नि मिली वह भी दूर हुई। फिर नदी आई वह केवल गुल्फमात्र (टकुनिया की बराबर) हो गई। फिर हींसता हुआ घोडा मिला, गर्जता हुआ

हाथी मिला, दूध टपकाती हुई गाय मिली। अनन्तर एक स्त्री मिली और एक कन्या मिली वह इनको ले गई। आगे जाकर विचित्र वृक्ष तथा लताओं से मण्डित एक भगवद्भक्त का स्थान दिखाई दिया। वहाँ और सभी को बाहर ठहराकर उस पूर्वोक्त ब्राह्मण सहित कृष्णदासादिक भीतर गये। वहाँ तिलक मुद्रा आदि से अलङ्कृत वैष्णव मिले और आगे विचित्र शृङ्गार से मण्डित वेणु तथा वेत्र से अलङ्कृत पुष्पमण्डपिका में स्थित श्रीगोपाल के दर्शन हुए। श्रीगोपाल के आगे उन वैष्णावों का वृद्ध गुरु भागवत का पाठ करता दिखाई दिया। उस वृद्ध ने कृष्णदासादिकों का अच्छा सत्कार किया और पूछा तुम कौन हो? तब कृष्णदास कहने लगे हम वेदव्यास विष्णुस्वामि मतवर्ती श्री वल्लभाचार्य के शिष्य हैं।

फिर क्या था वृद्ध अत्यन्त प्रसन्न हुआ और कहने लगा। मैं भी विष्णुस्वामीजी के शिष्य देवदर्शनाचार्य का शिष्य हूँ और उनकी आज्ञा से आचार्यचरण के दर्शन के लिये योगबल से यहाँ आकर ठहर रहा हूँ। यों कहकर वह वृद्धतापस अपने शिष्यों सहित देव को शिर पर धरकर आया और आचार्यचरण को नमन कर सशिष्य वैकुण्ठ गया। अनन्तर कृष्णा दास ने सब वृत्तान्त आचार्यचरण से कहा और पूछा कि जो मार्ग में मिले थे वे कौन थे? आचार्यचरण ने कहा, सिंह जो मिला था वह मृत्यु था। दावानल संसार था। नदी विषयों की पंक्ति थी। घोड़ा पृथ्वी का भोग था। हाथी स्वर्ण का भोग था। स्त्री विद्या थी और कन्या भक्ति थी। फिर आचार्यचरण पारायण को समाप्त कर वहाँ से चले और गोदावरी में स्नान करते हुए तथा नृसिंह–क्षेत्र की परिक्रमा करते हुए अपने अग्रहार पहुँचे।

पूर्वयात्रा

इस तरह पिता (लक्षमण भट्टजी) की संकल्पित सात्त्विकी तीर्थ यात्रा नौ ९ वर्ष में पूर्ण हुई।

प्रथमयात्रा

फिर माता के पूछने पर आचार्यचरण ने तीर्थयात्रा का सब वृत्तान्त

वर्णन किया और अपनी मार्ग में होने वाली विपत्तियाँ तथा उनसे द्वारकेश आदि की की हुई रक्षा का भी वर्णन किया। इसके अनन्तर थोड़े समय तक घर रहे और मातृचरण की आज्ञा से उन के अर्थ तथा राजस दैव जीवों के उद्धारार्थ **द्वितीययात्रा** को प्रारम्भ किया।

उस यात्रा में **मङ्गलप्रस्थ** होते हुए **व्यङ्कटेश (लक्ष्मणबालाजी)** पधारे। वहाँ से पूर्ववत् दक्षिणयात्रा करते हुए विद्यानगर के पास **नारायणदास** कायस्थ को उपदेश कर तथा उसको साथ लेकर भीमरथी होते हुए (पांडुरङ्ग) **श्री विठ्ठलनाथ जी** की सेवा को पधारे। श्रीविठ्ठलनाथ जी ने आज्ञा की कि 'आप विवाह करिये। आपके लिये मैंने काशी में कन्या का सम्पादन कर दिया है और उस कन्या में आपके घर मैं उत्पन्न होऊंगा'। इस आज्ञा को आप कष्ट से स्वीकार करके तथा श्रीविठ्ठलनाथ जी को प्रणाम करके **नर्मदा** के दक्षिण तटस्थ तीर्थों में स्नान करते हुए तथा **गुर्जरदेश (गुजरात)** को पवित्र करते हुए **सुदामपुर (पोरबन्दर)** पधारे। वहाँ के उपवन में **'कपूर सुदामबाल'** को उपदेश किया और उसे अपने साथ लिया। फिर **द्वारका में भगवानदास** ब्राह्मण को तथा **त्रिवेदिराज** और **माधव** दोनों को शिष्य कर **सिद्धपुर** पधारे। वहाँ भीमनाथ में कोई स्त्री पुरुष स्वतः आये और प्रणाम कर कहने लगे। 'हमने जितने पुत्रलाभ के उपाय हैं सब किये परन्तु अब तक हमें पुत्रलाभ नहीं हुआ। इस समय भी महारुद्र का अनुष्ठान करके जब आपका प्रभाव सुना तो आपके शरण आये हैं अब आप अनुग्रह करिये'। आचार्यचरण ने उनको बहुत प्रकार से समझाये और वरदान दिया कि 'तुम्हारे एक मास पीछे ही पुत्रोत्पत्ति होगी' और पुत्रप्राप्ति के लिये गोपालपूजनार्थ एक ब्राह्मण भी नियुक्त कर दिया। अनन्तर वहाँ से पधारे और पूर्ववत् द्वारका की यात्रा की। फिर जब इनके पुत्र उत्पन्न हो गया तब इनको वैराग्य हुआ और आपसे संन्यास लेने की प्रार्थना करने लगे। अतः आपने इनको संन्यास के धर्म सुनाये। स्त्री को संन्यास में अनधिकार बताकर उसको दो तरह का पति के साथ अनुगमन बताया। फिर वे दंपती वृन्दावन गये और भागवत संन्यास लेकर दोनों साथ ही मुक्त हुए। आचार्यचरण ने उनके बालक का नाम गोपालदास रक्खा और उसको मन्त्रोपदेश कर प्रस्थान किया। अनन्तर **पुष्करारण्य** के मार्ग से व्रज पधारे। वहाँ **व्रजयात्रा** की और **एका** नामक क्षत्राणी का उद्धार किया। वहाँ से **कुरुक्षेत्र** होते हुए **बदरिकाश्रम** पधारे। वहाँ से **व्यासाश्रम** गये। वहाँ एक शिला पडी

थी उसको कृष्णदास ने उठाई अतः आचार्यचरण ने कृष्णदास को दो वरदान देने की प्रतिज्ञा की। फिर आपने उसके भीतर जाकर बिल्वमङ्गल की आज्ञा से श्रीव्यासजी से प्रमाण चतुष्टय (वेद, गीता, ब्रह्मसूत्र, भागवत) में जो सन्देह थे वे पूछे। व्यासजी ने वे वर्णन किये और यह कहा, 'आप भक्ति का प्रचार करना, सिद्धान्त–ग्रन्थों का निर्माण करना, प्रतिपक्षों का निवारण करना, और गार्हस्थ्य धारण करना'। आचार्यचरण ने यह आज्ञा स्वीकार की और उनको प्रणाम किया।

अनन्तर **हरिद्वार** के उपमार्ग से चलते हुए **शूकरक्षेत्र (सोरों)** पधारे। वहाँ कृष्णदास को गुरुदर्शन की आज्ञा देकर कन्नौज होते हुए **प्रयाग** आये। कन्नौज में चतुःसम्प्रदायस्थ विरक्तों ने आपका आदर किया। फिर आप वहाँ से **काशी** पधारे। वहाँ दामोदरदास कृष्णदास आदि आचार्यचरण का देवविभूति से समर्चन कर रहे थे और आचार्यचरण पारायण कर रहे थे। उस समय ब्रह्मचारी वेष में विराजमान श्रीमदाचार्यचरण से (पाण्डुरङ्ग) श्रीविट्ठलनाथ जी के प्रेरित देवनभट्ट ने कन्यादान ग्रहण करने की प्रार्थना की। उसके प्रत्युत्तर में आपने कहा कि इस विषय को मातृचरण जानें। शम्भुभट्ट ने कहा कि 'अच्छा अब आपका कार्य सिद्ध हो जायेगा'। फिर आचार्यचरण काशी में प्रविष्ट हुए और वहाँ श्रेष्ठिपुरुषोत्तमदास के घर ठहरे। मातृचरण के बुलाने के लिये शम्भुभट्ट को वहाँ ही ठहराया और आप **जगन्नाथयात्रा** को प्रस्थित हुए। कितने ही दिन के बाद सायंकाल के समय **गङ्गासागर** पहुँचे। वहाँ रात्रि में स्नानादि तो कर लिये पर फलाहार न मिलने के हेतु क्षुधित ही रहे। तब तो भगवान् ने आपसे कहा कि 'मुझे भूख लगी है' आचार्यचरण आज्ञा करने लगे कि 'इस समय सिके हुए ब्रीहि (चिडुआ) कौन ला सकता है?' जब कृष्णदास ने यह बात जानी तो उसी समय गये और ब्रीहि सेक कर लाये। आचार्यचरण ने वे भगवान् को निवेदन किये और पीछे स्वयं आपने भी ग्रहण किये तथा अवशिष्ट सब को प्रदान किये। फिर कृष्णदास से आपने तीन वरदान माँगने की आज्ञा की। कृष्णदास ने 'मुखरता दोष नहीं रहना[2], अन्तःकरण में श्रद्धा का ठहरना[3], मेरे गुरु को आपके[1] दर्शन देना, ये तीन वरदान माँगे। फिर आचार्यचरण **सुन्दरवन** के मार्ग से **श्रीजगदीश** पधारे। मार्ग में **सुन्दरदास** पर अनुग्रह किया और वहाँ से लौटे तब माधवदास पर अनुग्रह करते हुए पुनः **काशी** पधारे।

इस तरह पाँच वर्ष में दूसरी यात्रा की।

द्वितीययात्रा

जितने समय में आपने जगन्नाथ यात्रा की उतने समय में इधर अपने देश से आपका कुटुम्ब आ गया और आन्ध्र (तैलङ्ग) जाति में जो परस्पर विरोध हो रहा था वह भी शान्त हो गया। इधर श्रेष्ठिपुरुषोत्तमदास ने विवाहोपयोगी पदार्थ भी सम्पादन कर दिये। फिर क्या था गणपति का स्थापन कर विवाह का आरम्भ किया गया। उसमें प्रथम समावर्तन करके आपका ब्रह्मचर्याश्रम हटाया गया। फिर आपके काका **जनार्दनभट्ट जी** और भ्राता रामकृष्णजी विष्णुचित् उपाध्याय सुभद्रा के वर **रामेश्वर जी** सरस्वती के वर महेश जी मातुल **लक्ष्मीपति जी** तथा शम्भुभट्टादिकों को आगे करके कन्यायाचन के लिये देवनभट्ट के घर गये। वहाँ देवनभट्ट, कृष्णार्य रामार्य, शङ्कर, अच्युत, विष्णुभट्ट, सदाशिवदीक्षित आदि सब जनों ने मिलकर इन सब को निश्चयताम्बूल दिया और कन्यादान की प्रतिज्ञा की। दूसरे दिन ग्रहमख हुआ। तृतीय दिवस दोनों तरफ वृद्धयुत्सव, वस्त्र अलङ्कार तथा दक्षिणादि का दान और महाभोजनादि हुए। फिर चतुर्थ दिन अर्थात् आषाढ़शुक्ला पञ्चमी को आपका विवाहोत्सव बडे समारोह के साथ हुआ और विवाह के समय गोत्रोच्चार भी हुआ।

फिर वर का अतिथिपूजन हुआ जिसमें देवनभट्ट सुधा तथा उनके अन्य सम्बन्धियों ने आपका पादप्रक्षालन किया। इस तरह यथाविधि आपका विवाह सम्पूर्ण हुआ। फिर प्रथम ही काका जनार्दन भट्टजी ने वधू को दीक्षा दी। विवाह समाप्त हो जाने पर आचार्यचरण ने औपासन विधि का प्रारम्भ किया और षण्मास पर्यन्त वहाँ ही निवास किया।

अनन्तर आपके लिये तथा तार्तीय (तृतीय कक्षा के) दैवजीवों के उद्धारार्थ तृतीययात्रा का प्रारम्भ किया। उसमें काशी से चलकर **झारखण्ड** वैद्यनाथ पधारे थे कि रात्रि में भगवान् **श्रीगोवर्धननाथ जी** ने आज्ञा दी कि 'आप ब्रज में आइये और मेरी सेवा का प्रकार सम्पादन करिये'। फिर आचार्यचरण जगे और दामोदरदास, कृष्णदास, रामदासादिकों को वह सब कथा वर्णन की। और वहाँ से ही **व्रज** पधारे। मार्ग में **पद्मनाभ, नारायण** तथा **कुम्भनदास** को अङ्गीकार किये और वहाँ पधारकर **श्रीनाथजी** की सेवा का प्रकार सम्पादन किया और रामदास को वहाँ रखकर **मिथिला** तथा **अयोध्या**

के ऊपर के मार्ग से पुनः झारखण्ड पधारे। वहाँ से **जगन्नाथ** तथा **महेन्द्राचल** होते हुए **श्रीविट्ठलनाथ** पर्यन्त गये। वहाँ से नर्मदा के उत्तरतट के मध्यमार्ग से गुर्जर देश में बहुतेरे दैवजीवों का उद्धार करते हुए द्वारका पधारे। **द्वारका** में कुछ समय विराजे। और फिर मीरा के पुरोहित राम के ऊपर अनुग्रह करते हुए **भोज़कटादि** के मार्ग से **लोहार्गल** पधारे।

वहाँ निवास करके कुरुक्षेत्र को छोड़कर **गङ्गोत्री यमुनोत्री** तथा केदारनाथ के मार्ग से **बदरिकाश्रम** पधारे। वहाँ वामन द्वादशी के दिन एकादशी के उपोषित आचार्यचरण को नारायण भगवान् ने मुन्यन्न से पारण कराया। फिर **व्यासाश्रम** पधारे। वहाँ व्यासजी को प्रणाम कर आपने निवेदन किया कि 'जो आपने आज्ञा दी थी वह सब सम्पादन कर दी। परन्तु श्रीमद्भागवत में बहुत सी जगह पाठभेद तथा न्यूनाधिक पाठ और अनन्वित पाठ भी दिखाई देते हैं। वहाँ क्या करना चाहिये? जैसे 'भवतीनां वियोगो में यहाँ पर 'आत्मत्वाद्भक्तवश्यत्वात्सत्यवाक्त्वाक्त्वात्स्वभावतः' इस अर्ध का विचार किया है वह किस तरह प्रमाण है? तब तो व्यासजी ने आपकी पुस्तक ले ली और बोले कि 'इसमें शुद्ध शुद्ध रह जाओ और जो अशुद्ध हो सो चला जाओ'। फिर पुस्तक खोल कर दिखाई। उसमें सब शुद्ध ही शुद्ध पाठ हो गये।

अनन्तर आप अत्यन्त प्रसन्न होकर तथा उनको प्रणाम करके चले और **हरिद्वार** पधारे। वहाँ घोटकयोगी को घोडा बना कर उसका गर्वमर्दन किया। फिर वहाँ से **कुरुक्षेत्र** पधारे। वहाँ एक रामदास पण्डित बडा गर्विष्ठ था। आचार्यचरण ने उसे जीतकर उस पर अनुग्रह किया। वहाँ से **व्रज** में **गिरिराज** पर पधारे। वहाँ भगवान् की आज्ञा पाकर **पूर्णमल्ल** श्रेष्ठी श्रीगोवर्धननाथ का मन्दिर बनवाने को आया। आचार्यचरण ने उसे शिष्य किया और वैशाख शुक्ल तृतीया को मन्दिर की नींव डाली गई। फिर आचार्यचरण भगवान् (श्रीगोवर्धनधरण) को प्रसन्न कर गोकुल पधारे। वहाँ विराजकर नारायण ब्रह्मचारी के ठाकुर **श्रीगोकुलचन्द्र** का पालन कर **अग्रपुर** पधारे। वहाँ भी **गर्जन** के ठाकुर **नवनीतप्रिय जी** को प्रसन्न कर **कन्नौज** पधारे। वहाँ दामोदर श्रेष्ठी से सेवित **श्रीद्वारकानाथजी** और पद्मनाम से सेवित **श्रीमथुरेशजी** का प्रीति से सेवन कर **अलर्कपुर** पधारे। वहाँ रात्रि में सोमेश्वर ने आपको आज्ञा दी कि 'आपने मेरा सम्प्रदाय स्थापन किया है अतः सकुटुम्ब आप यहाँ

निवास करिये'। पृथ्वी में तीन जगह वैकुण्ठभूमि है। १ चरणाद्रि में वृन्दा की भूमि है २ चम्पारण्य में मालती की भूमि है ३ और यहाँ धात्री की भूमि है। इन तीनों की ही तीन प्रकार की तुलसी हैं। १ वनोद्भवा २ कृष्णा ३ और श्वेता। फिर आचार्यचरण उस आज्ञा को स्वीकार कर प्रभात में वहाँ से पधारे और काशी में अपने घर आये।

इस तरह **तृतीय यात्रा** आपने चार वर्ष में समाप्त की।

तृतीय यात्रा

अनन्तर मातृचरण के आज्ञानुसार पुरुषोत्तमदास श्रेष्ठी की सहायता से तीस हजार ३०००० ब्राह्मण भोजन करने के लिये केशवभट्ट के कथन से उसके संकेत रूप से ध्वजा आरोपण की गई। उस समय कितने ही मात्सर्य ग्रस्त विद्वानों ने यह ढिंढोरा कर दिया कि 'यह काशी के विजय की ध्वजा है'। अतः काशीस्थ आपसे विवाद करने आने लगे। जब विद्यार्थी लोग और खल लोगों ने विवाद का आरम्भ किया तो आचार्यचरण ने विचार किया कि 'इस तरह तो यज्ञकार्य, सेवाकार्य और गृहकार्य सब होते हैं। अतः आपने पुरुषोत्तमदास श्रेष्ठी के घर विराज कर पञ्चगङ्गा घाट पर सभा करवाई। सभा में २७ (सत्ताईस) दिन तक शास्त्रार्थ हुआ। सत्ताईसवें दिन जाते उपेन्द्रादिक यति तथा और विद्वान् लोग भी पराजित हो गये। तथापि काशी के खललोग भला इस तरह कैसे शान्त हो सकते थे। उनने तो फिर भी आचार्यचरण को पत्रिकाएँ भेजीं। आचार्यचरण ने भी एक पत्रिका लिखकर श्री विश्वनाथ के द्वार पर आरोपण कर दी। उसे देखकर विद्वान् लोग तो चुप हो गये पर दुष्टों ने तो उसे भी फाड डाली। तब तो श्रेष्ठी जी ने राजा की आज्ञा से उनको धमकाये। अतः उनने अभिचार शुरू किया। इस अवसर में आपने हरिवंश पाठक आदि पर अनुग्रह किया और भार्या के द्विरागमादि संस्कार भी किये। आपके श्वशुर भागवत साम्प्रदायिक थे जब उनने संन्यास ले लिया तो सुधा ने पञ्चदेवताओं के पूजन का धन भी आचार्यचरण के निवेदन कर दिया।

अनन्तर विश्वनाथजी की आज्ञानुसार आप काशी से पधारे। चरणाद्रि में सम्प्रदायिकों की प्रार्थना से आपने शङ्करकर्मन्दी को जीता। अनन्तर

अलर्कपुर (अडेल) पधारे और वहाँ ही निवास करने लगे। जब वहाँ से व्रज पधारे उस समय सुप्रसिद्ध सारस्वत **सूरदासजी**[1] पर अनुग्रह किया और गोकुल में निवास किया। फिर गिरिराज पधारे। वहाँ कृष्णदास जी पर अनुग्रह किया और कृष्ण भट्ट को आचार्य करके यज्ञ भी किया। उस ही समय वैशाख़ तृतीया के दिन **श्रीगोवर्धनधर** का नवीन मन्दिर में स्थापन किया गया। उस समय वृन्दावनादिकों से वैष्णव विद्वान् तथा महन्त लोग आये। उन सबका दान तथा मान से अच्छा सत्कार किया गया। फिर पूर्णमल्ल ने चन्दन तथा धन श्रीनाथजी को अर्पण किया। इसके अनन्तर आचार्यचरण ने कृष्णदासजी को श्रीनाथजी के अधिकारी किये। सेवामें शिष्यों सहित माध्वसम्प्रदायी माधवाचार्य को नियुक्त किये। परिचारकी में उदीच्य रामदासजी को पाककार्य में साचीहर (साँचोरा) रामदासजी को, विरक्त वैष्णव तथा व्रजवासियों को अन्यकार्य तथा मन्दिर की रक्षा के लिये नियुक्त किये। गायन कर्म में कुम्भनदास जी को नियुक्त किये और आप सकुटुम्ब गोकुल पधारे। वहाँ आपकी कथा में सशिष्य केशवाचार्य आये। उनको मथुरा में विश्रान्त घाट पर जो यवन–यन्त्र (जिसके नीचे होकर निकलने से हिन्दू लोग चोटी कट कर यवन हो जाते थे) था उसके उतरवाने के लिये योगिनीपुर आचार्य ने वहाँ के पुरद्वार पर आपका दिया हुआ यन्त्र बाँधा। जिसके नीचे होकर निक़लने से यवन लोग हिन्दू होने लगे। जब वहाँ के बादशाह ने यह बात सुनी तो उस समय आज्ञा दी कि 'मथुरा में जो यवन यन्त्र है उसे उठा दो'। फिर क्या था, यवन लोग आये और उनने उस ही समय यन्त्र उठा लिया। अनन्तर श्रीमदाचार्य चरण सशिष्य स्थानेश्वर पधारे। वहाँ आपने रामानन्द पर अनुग्रह किया और पुनः गोकुल पधारे। गोकुल में जब आपकी महिला (बहूजी) की प्रार्थना से सङ्कर्षण उनके गर्भ में आ गये तब यवनों के भय के मिष से निज कुटुम्ब तथा निजप्रभु को वासुदेवादिकों के साथ अलर्कपुर (अड़ेल़) भिजवाये और पीछे से दामोदरादिकों सहित आप भी वहाँ पधारे। वहाँ जब गर्भिणी भार्या के सब संस्कार हो चुके तब संवत् १५६७ की आश्विन कृष्ण द्वादशी को **श्रीगोपीनाथजी** का प्रादुर्भाव हुआ। अनन्तर उनके संस्कार किये गये और दीक्षा भी दी गई। तदनन्तर आप काशी गये और वहाँ ज्योतिष्टोम (सोम) याग के साधन के लिये श्रेष्ठी पुरुषोत्तमदास जी को नियुक्त कर ऋत्विजों की परीक्षा के लिए घर पधारे

1– सुप्रसिद्ध सूरसागर ग्रन्थ के कर्त्ता यही भक्त शिरोमणि सूरदासजी है।

और वहाँ विष्णुचित् उपाध्याय तथा शम्भुभट्ट को मुख्य कर के काशीपति आदि के साथ बारह–बारह ऋत्विजों की परीक्षा ली।

अनन्तर देश में बुलाये हुए जनार्दनभट्टादिक सब लोग आये। इस समय आपके अग्रज रामकृष्णभट्टजी का देहावसान हो गया था। अतः सबके शोक को दूर करने के लिये आपने उनको वैकुण्ठ में विराजमान दिखाये और प्रयाग में सोमयाग के लिये शाला शिविर आदि का निर्माण करवाया। उस सोमयाग में सब स्वकीय जनों को एक काम पर नियुक्त किये। जैसे मातृचरण को सेवा के कार्य पर विष्णुचित को उपाध्यायत्व पर – इत्यादि इत्यादि। इस तरह इस यज्ञ में सबको नियुक्त करके और आचार्यचरण ने समागत पुरुषों का दानमान से अच्छा सत्कार करवाया और सबको खूब दक्षिणा भी दी। अनन्तर याग को समाप्त कर तथा अवभृथस्नान करके अपने घर आये। एक दिन आचार्यचरण के उदर में व्यथा हुई इस लिये शिष्यलोग आपके लिए औषध लाये। आपने उसे अग्नि में फेंक दिया और आपके उदर की व्यथा शान्त हो गई। एक समय आप व्रज आ रहे थे उस समय **अघमर्षण** में एक विष्णु मुनि का शिष्य तपस्विराट् आया और आचार्यचरण की स्तुति करने लगा। स्तुति के प्रभाव से वह विमान में बैठकर वैकुण्ठ गया।

इनके अनन्तर आपने व्रजयात्रा की। एकदिन श्रीबहू जी आप से कहने लगे कि 'आपने मुझे श्रीगोकुलेशजी के प्रादुर्भाव के अर्थ उनकी सेवा बताई है उसे मैं करती रहती हूँ। पर आजकल श्रीगोकुलेशजी तथा मदनमोहन जी मुझे देखकर बहुत हँसा करते हैं तथा लज्जित हुआ करते हैं इसका क्या कारण है वह आप वर्णन करिये'। तब तो आचार्यचरण कहने लगे 'बस अब आपका मनोरथ सिद्ध हो गया, अब शीघ्र ही प्रादुर्भाव होगा'। फिर सकुटुम्ब आप जगदीश–यात्रा को प्रस्थित हुए और जगदीश–यात्रा करके वाराणसी होते हुए **चरणाद्रि** पधारे। वहाँ भगवान् की व्यापिवैकुण्ठ–लीला प्रकट हुई।

उस समय श्रीविट्ठलनाथ जी का स्वरूप आया और नन्दालयोत्सव भी हुआ और वहाँ संवत् १५७२ में महालक्ष्मी जी के उदर से **गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी** का प्रादुर्भाव हुआ। वहाँ से पुनः अलर्कपुर आये और वहाँ ही आप के संस्कार हुए। इसके अनन्तर आपने पुनः व्रजयात्रा की और श्रीगोपीनाथजी के यज्ञोपवीत का महोत्सव भी किया। फिर गजनधावन से **नवनीतप्रियजी**

को लाये। इसके अनन्तर गंगासागर होते हुए जगदीशयात्रा को पधारे। इस समय आपने **कृष्णचैतन्यजी** से संगम किया और रथयात्रा का उत्सव वहाँ ही किया। अनन्तर जगदीशयात्रा से आकर **हरिद्वारयात्रा** में पधारे। वहाँ मेला के कारण बड़ी भीड़ थी अतः आचार्यचरण ने अपनी योगमाया से सबको सुलाकर पहले विरक्त वैष्णव तथा लकुटालोकि, केवल राम, भगवानदास आदि को स्नान करवा दिया। वहाँ से अडेल पधारे। वहाँ कविराज को शिक्षा दी तथा परमानन्द कान्यकुब्ज पर अनुग्रह करके उसे लीला के दर्शन करवाये। इसके अनन्तर की व्रजयात्रा में **सन्तदास** पर अनुग्रह किया और ब्रज से कुरूक्षेत्र पधारे। फिर **गोपालदास** तथा **गंगाबाई** पर अनुग्रह किया और द्वारका यात्रा की। वहाँ से व्रज आये और व्रज से हरिमूर्ति लेकर अलर्कपुर (अड़ेल) पधारे। उस ही समय **श्रीविट्ठलेशजी** का यज्ञोपवीतोत्सव किया गया।

पूर्व चरित्र अवच्छेद

इसके अनन्तर **श्रीद्वारकेश** पधारे और **गोपीनाथजी** की यात्रा हुई। काकाजनार्दनजी ने श्रीगोपीनाथजी का दक्षिण में विवाह भी करवा दिया। इसके अनन्तर जगदीश यात्रा हुई। इस यात्रा में गङ्गासागरसङ्गम पधारे थे कि तृतीयस्कन्ध की श्री सुबोधिनीजी पूर्ण हुई और आपके लीला में पधारने के लिये भगवान् की प्रथम आज्ञा हुई। तदनन्तर आप व्रज पधारे और आपके साथ गोपीनाथजी भी पधारे। इस समय ही श्रीगोवर्द्धननाथ के मन्दिर में गोपीनाथ जी के बहूजी की दीक्षा हुई और उस दिन से ही **गोपीवल्लभभोग** समर्पण होने लगा। इसके अनन्तर व्रजयात्रा में पधारे तब मधुवन में पुनः द्वितीयाज्ञा हुई कि 'आप लीला में आइये'। फिर अग्रपुर में सांचीहर (साँचोरा) उत्तमश्लोक द्विवेदी के ऊपर तथा कडापुर में **अम्बाक्षत्रिय** के ऊपर अनुग्रह किया गया। फिर अडेल पधारे और वहाँ ही भगवान् की आज्ञा से आपने दशम स्कन्ध पर सुबोधिनी जी पूर्ण की और एकादश पर आरम्भ की। इस समय आपको लीला में पधारने की तृतीय आज्ञा हुई। फिर सभा में मातृचरण को उपदेश दिया तथा उनसे संन्यास की प्रार्थना की और मातृचरण तथा बहूजी का शोकहरण भी किया। अनन्तर श्रीगोपीनाथ जी को आचार्यसिंहासन पर आरूढ़ किये और दामोदरदासादिकों को शिक्षा दी कि 'तुम विट्ठलनाथ को अच्छी तरह रखना

और इनको शिक्षा देना'। फिर बहूजी को प्रबोधन किया तथा अपने अन्तःकरण का भी प्रबोधन किया। दामोदरदासादिकों ने भी आपके साथ चलने की तथा संन्यास लेने की प्रार्थना की। आचार्यचरण ने कहा कि 'तुम्हारे भागवतसंन्यास तो है ही केवल मेरे कार्य के लिये उद्धवादिकों की तरह यहाँ ही रहो' और संन्यास निर्णय भी सुनाया।

जिसका आशय यह है कि –

भक्तों को विरहानुभव के लिये संन्यास ग्रहण है और रसात्मा भगवान् सब जगह स्फुरित होते हैं। इस लिये हसन, रुदन, गायन आदि किये जाते हैं और सर्वत्र भगवान् की ही भावना की जाती है। फिर चुप रहकर ध्याननिष्ठा रक्खी जाती है। जो मनुष्य मातृकुल पितृ कुल तथा गुरुकुल से विशुद्ध हो तथा जिनके गर्भाधानादि संस्कार हो चुके हों, जिनने वेद तथा वेदाङ्ग विधि से पढ लिये हों, जिनने अनिषिद्ध तथा निष्काम नित्यनैमित्तिक कर्म कर लिये हों, जिनने ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय गुरु का आश्रय किया हो, जो विधि से त्रैवर्गिक कर्म को छोड के सन्ध्यावन्दन देवार्चन और वेदाभ्यास में तत्पर हों तथा केवल ब्रह्मभावना में रत हों और शमदम में जिनकी निष्ठा हो उनको कुटीचकादि क्रम से संन्यास ग्रहण करना चाहिये। पर उनमें भी शिखा यज्ञोपवीत कषाय–वस्त्र त्रिदण्डादि पुरःसर संन्यासग्रहण ब्राह्मण को ही है। कषाय–वस्त्र तथा त्रिदण्ड रहित वैश्य को भी है। भगवद्भक्त ब्राह्मण, भगवान् तथा गुरु की परिचर्या के लिये उनकी दासत्वभावना से सब छोडकर शुक्लवस्त्र धारण पुरःसर संन्यास तो शूद्र को भी विहित है।

इसके अनन्तर माध्वसम्प्रदायी और विष्णुस्वामि मतानुयायी **माधवेन्द्रयति** आये। आचार्यचरण ने उनकी प्रशंसा कर उनको वहाँ रक्खे और उनसे संन्यासधर्म सुनवाने लगे। फिर आपने माधवोपाध्याय को बुलाकर पूछा कि 'भागवत संन्यास पद्धति' कहाँ है ? उनने कहा कि वल्लभदीक्षित की विधान की हुई वह 'पद्धति' आपके यहाँ ही है। फिर गोपीनाथ जी के हाथ से पद्धति माँगकर उनने संन्यास ग्रहण करवाया। उसमें माधवेन्द्रयति ने प्रेष दिखाया और 'पूर्णानन्द' यह नाम रक्खा। फिर आचार्यचरण ने कुटीचकाश्रम ग्रहण किया और काषाय–वस्त्र त्रिदण्ड़ शिखा यज्ञोपवीत धारण करते हुए तथा स्नान सन्ध्या भगवत्पूजनादि कर्म करते हुए और अपने घर में भोजन करते हुए छः

दिन तक अपनी बैठक में रहे। अनन्तर बहूदकाश्रम ग्रहण करके गङ्गातीर पर रहते हुए तथा अपने सम्बन्धियों के यहाँ से भिक्षा ग्रहण करते हुए आठ दिन तक रहे। फिर परमहंसाश्रम ग्रहण करके काशी पधारे।

मार्ग में आप वैष्णव ब्राह्मणों के सात घरों से भर्जित धान्य, सत्तू, फल आदि लाते और उसको भगवान् के निवेदन करके तथा उसमें से भूतबलि निकाल के और उसे तीर्थ के जल से धोकर के भोजन करते। मार्ग में जो वैष्णव समाज मिला वह सब आपके आगे तथा पीछे लग गया और शङ्ख घण्टादि के नाद तथा गद्यादिक से स्तुस्ति करने लगा। इस तरह संन्यासव्रत का आचरण करते हुए आप अठारह दिन में काशी पहुँचे। वहाँ **हनुमान्** घाट पर सात दिन तक पारमहंस्य–व्रत में रहे। फिर आपने केवल कोपीन मात्र लगाकर भगवती भागीरथीं के शुभजल में प्रवेश किया। उस समय गोपीनाथ जी आदि आये और कहने लगे कि हम लोगों को क्या करना चाहिये ? उसके प्रत्युत्तर में आपने खडी से शिला के ऊपर साढे तीन श्लोक लिखे। अनन्तर आप नाभिमात्र जल में उतरे और नेत्र मीचकर परमानन्द–विग्रह श्रीपुरुषोत्तम को निजात्मा से अभिन्न चिन्तन करते हुए संवत् १५८७ के आषाढ–शुक्ल द्वितीया पुष्यार्क में मध्यान्ह के समय ज्वाला–पुंज के मार्ग से **व्यापिवैकुण्ठ** पधारे। उस समय आकाश से पुष्पवृष्टि हुई और स्वर्ग में नृत्य गीत तथा वाद्य होने लगा। जो लोग उस समय आपके दर्शन कर रहे थे उनको बडा भारी शोक हुआ। गोपीनाथ जी को माधव यती के कहने पर शोक छोडकर श्रीमदाचार्यचरण का यतिधर्म के अनुसार पारलौकिक संस्कार किया।

अनन्तर आचार्यचरण के सिंहासन पर श्रीगोपीनाथजी विराजे और आपकी मर्यादा का पालन करते हुए भागवत धर्म का प्रचार करने लगे। श्रीगोपीनाथजी गोपालमन्त्र का पुरश्चरण करने के लिये गोवर्द्धन पर्वत पर पधार कर **श्रीनाथजी** का सेवन करने लगे। इसके अनन्तर आँप अपने पुत्र को काका **श्रीविट्ठलनाथजी** के पास छोडकर **श्रीजगन्नाथजी** पधारे और उनके मुखारविन्द में प्रविष्ट हुए। सब जनों ने (आपके पुत्र) पुरुषोत्तम जी को बालक जानकर **श्रीविट्ठलनाथाचार्यो** को सिंहासनारूढ़ किये। पर श्रीगोपीनाथ जी की महिला (बहूजी) इस बात से अप्रसन्न हुई और देवर श्रीविट्ठलनाथ जी से विरोध करके आचार्यचरण के पुस्तक तथा धनादि सब आपने ग्रहण कर लिये।

तदनन्तर श्रीविट्ठलनाथजी ने दामोदरदास से श्राद्ध दक्षिणा में अपने सिद्धान्त का अवगमन किया और सब पुस्तकें मुख से लिखवाई तथा वैष्णवलोगों से द्रव्य सञ्चय किया। सब भट्टलोगों की सम्मति से श्रौत तथा स्मार्त धर्म का प्रचार किया और तातपाद श्रीमदाचार्यचरण के अभिप्रेत पुष्टि भक्ति धर्म का दामोदरदास की सम्मति से प्रचार किया।।

आर्य लोग आचार्यचरण (श्रीवल्लभाचार्यजी) के चौरासी 84 ग्रन्थ चौरासी ही बैठकें और चौरासी ही भक्त तथा चौरासी ही कथाएँ कहते हैं।।

ग्रन्थोपसंहार

इस चरित्रविजय ग्रन्थ में मैंने जैसा आचार्यचरण का चरित सुना था वैसा लिखा है इससे श्रीमदाचार्यचरण प्रसन्न होवें।

यह ग्रन्थ संम्वत् १६५८ फाल्गुन शुक्ल (द्वितीया) रविवार को नर्मदा के तटवर्ती चमत्कारिपुर में पूर्ण हुआ।।

श्रीवल्लभदिग्विजय हिन्दी सम्पूर्ण

।। इति शुभम्।।

प्रभु श्रीनाथजी के नाथद्वारा पधारने का मार्ग

प्रभुश्री नाथजी का मेवाड़ में पधारना

विद्या विभाग मंदिर मण्डल नाथद्वारा द्वारा प्रसारित

चौधरी ऑफसेट प्रा. लि. - 0294-2584071, 2485784 / 2863